नाम या शब्द

भाग–1

आदि में शब्द था...

कृपाल सिंह

'नाम या शब्द'

भाग-1

मूल पुस्तक :

'Naam or Word', 1960

हिन्दी अनुवाद :

प्रथम संस्करण : 1985

वर्तमान संस्करण : 2021 (**संशोधित**)

समर्पण

समर्पित है सर्वशक्तिमान परमात्मा को,
जो सभी पूर्ववर्ती संत–महापुरुषों के रूप
में कार्य करता रहा है तथा परम संत
हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज को,
जिनके पावन चरणों में बैठकर लेखक
ने पवित्र नाम–शब्द का परम–मधुर
अमृत–रस–पान किया।

प्रजापतिर्वै इदमग्रमासीत्,
तस्या वाक् द्वितीयो आसीत्,
वाग्वै परमं ब्रह्मः।।

— सामवेद (ताण्ड्य महाब्राह्मण 20:14.2)

अर्थात सृष्टि के आदि में सृष्टिकर्ता, प्रजापति ब्रह्म था; उसके साथ 'वाक्' या 'शब्द' था और 'वाक्' ही परम् ब्रह्म था।

***

आदि में 'शब्द' था, और 'शब्द' परमात्मा के साथ था और 'शब्द' ही परमात्मा था।

— सेंट जॉन

संक्षिप्त जीवन चरित्र :
परम संत कृपाल सिंह जी महाराज

परम संत कृपाल सिंह जी महाराज 6 फ़रवरी, 1894 ई. में, ज़िला रावलपिंडी के एक छोटे से गाँव, सय्यद कसराँ में एक संभ्रात सिक्ख घराने में पैदा हुए। रखने वालों ने नाम भी चुन कर रखा– 'कृपाल', जिसने दयामेहर के ख़ज़ाने दोनों हाथों से लुटाये और रूहानियत (आत्मज्ञान) को दौलत से दुनिया को मालामाल कर दिया।

अध्ययनशील विद्यार्थी

'होनहार बिरवान के होत चीकने पात।' बचपन ही से महापुरुषों के लक्षण आप में दिखाई देने लगे थे। घर से खाने–पीने की जो चीज़ें इन्हें मिलतीं, वे सब अपने साथी बालकों को बाँट देते और आप किसी एकांत स्थान में जाकर ध्यान में लीन हो जाते। इनका बचपन का ज़माना अनगिनत चमत्कारों से भरा पड़ा है, जिसके कारण 6 वर्ष की आयु से ही लोग इन्हें संत मानने लगे थे। इनका विद्यार्थी जीवन ज्ञान प्राप्ति और अध्ययनशीलता की अथक लगन का नमूना था। स्कूल की पढ़ाई के ज़माने में स्कूल की पूरी लायब्रेरी की किताबें आपने पढ़ डाली थीं।

ज्ञान प्राप्ति की अनन्य लगन

आप मिशन स्कूल में पढ़ते थे, जहाँ ईसाई पादरी अक्सर लैक्चर देने आया करते थे। एक बार एक पादरी साहब स्कूल में आए और एक एक कक्षा में जाकर विद्यार्थियों से उनकी इच्छाओं–आकांक्षाओं और जीवन के आदर्श के बारे में कई सवाल पूछे। जब इनकी (कृपाल सिंह जी की) कक्षा में पहुँचे तो पादरी साहब ने पूछा, "बच्चों! तुम किस लिए पढ़ रहे हो? पढ़–लिख कर तुम क्या बनना चाहते हो?" अपनी–अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न उत्तर लड़कों ने दिए। किसी ने कहा, मैं पढ़ाई ख़त्म करके डॉक्टर बनूँगा, किसी ने कहा, मैं इंजीनियर बनूँगा, किसी ने कुछ,

किसी ने कुछ कहा। रस्मी से जवाब थे, जिनके पीछे एक ही उद्देश्य था कि पढ़–लिख कर रोज़ी पैदा की जाए। जब कृपाल सिंह जी की बारी आई, तो उन्होंने कहा, "I read for the sake of knowledge," अर्थात् मैं ज्ञान प्राप्ति के लिए पढ़ रहा हूँ। पादरी साहब ये जवाब सुनकर बहुत ख़ुश हुए और भविष्यवाणी की कि ये लड़का एक दिन दुनिया में नाम पैदा करेगा।

यह जवाब ज्ञान प्राप्ति के लिए अनन्य लगन का परिचायक था, जो इन्हें उस परम ज्ञान की मंज़िल तक ले गयी, जिसको पाकर सब कुछ जाना हुआ और पाया हुआ हो जाता है।

जन-कल्याण की प्रेरणा

संत कृपाल सिंह जी ने पूर्व और पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के पथ–प्रदर्शन के लिए अनेकों ग्रंथ लिखे हैं, लेकिन सबसे बड़ा ग्रंथ उनका अपना जीवन है, जिसके महत्त्वपूर्ण दृष्टांत अंधेरी रात में चमकते तारों के समान जीवन पथ के यात्री को रास्ता दिखाते हैं। 12 वर्ष की आयु में श्री रामानुज के जीवन वृत्तांत में उन्होंने पढ़ा कि जब वे गुरु से दीक्षा लेकर वापस घर लौटे, तो गाँव के लोगों को इकट्ठा करके गुप्त मंत्र, जो गुरु से मिला था, उन्हें बताने लगे। लोगों ने टोका कि यह तुम क्या कर रहे हो, गुरुमंत्र बताना महापाप है, नरकों में जाओगे। रामानुज ने कहा, "अकेला मैं ही नरकों में जाऊँगा ना! यह सारे लोग तो बच जाएँगे।" आप फ़रमाते हैं, "यह वृत्तांत पढ़कर मैं बहुत प्रभावित हुआ और मैंने सोचा कि यदि यह आत्मज्ञान की यह दात कभी मेरे हाथ आई, तो मैं भी उसे इसी तरह मुफ़्त लुटा दूँगा।"

जीवन का लक्ष्य

1911 ई॰ में आपने मैट्रीकुलेशन परीक्षा पास की। उस वक़्त आपकी आयु 17 वर्ष की थी। अब यह सवाल सामने आया, जो पढ़ाई ख़त्म होने पर हरेक विद्यार्थी के सामने आता है, कि मेरे जीवन का लक्ष्य क्या है? मुझे ज़िंदगी में क्या काम करना है? आप फ़रमाते हैं कि "पूरे सात दिन मैंने इस सोच में गुज़ार दिए और अंत में फ़ैसला किया कि मेरे लिए परमात्मा पहले है, दुनिया बाद में।" फिर सारा जीवन इस आदर्श– प्रभु–प्राप्ति में लगा दिया।

महान जीवन की तैयारी

महाराज कृपाल सिंह जी के बचपन और विद्यार्थी जीवन से यह तथ्य दिन के उजाले की तरह सामने आता है कि उन्हें शुरू ही से उस महान कार्य का, जो आगे चलकर उन्हें करना था, पूर्ण आभास था। बचपन ही से उनका हर क़दम उस महान जीवन की तैयारी के लिए उठता रहा। उस जीवन के लिए असाधारण संस्कार एवं क्षमताएँ आप लेकर आए थे। चार वर्ष की आयु में ही वो ध्यानास्थित होकर अन्तर दिव्य मंडलों में विचरने लगे थे। आप फ़रमाते थे कि सुरत अर्थात् आत्मा के सिमट जाने से नींद का काम पूरा हो जाता है। आत्मा पिण्ड (स्थूल शरीर) को छोड़ ऊपर दिव्य मंडलों की सैर करके वापस आती है, तो शरीर recharge हो जाता है अर्थात् नया जीवन प्राप्त करता है। ये उच्च प्रवृत्तियाँ और संस्कार आप में जन्मजात थे और इनसे आप ने जीव–कल्याण के महान कार्य में बड़ा काम लिया।

प्रभु–प्राप्ति की ओर

उन्हीं दिनों एक घटना घटी, जिसने प्रभु की तलाश की चिंगारी को, जो इनके हृदय में सुलग रही थी, एक धधकती ज्वाला बना दिया। लाहौर में आप एक जवान औरत का हाल देखने गए, जो बीमार थी और जीवन के अंतिम स्वाँस ले रही थी। सहसा वह अपने रिश्तेदारों से कहने लगी, "मेरा कहा–सुना माफ़ करना, मैं जा रही हूँ," यह कहकर प्राण त्याग दिए। ये दृश्य देखकर आप सोचने लगे कि वह क्या चीज़ थी जो इस औरत के शरीर से निकल गई है, जिससे यह मुर्दा पड़ी है और हममें वह ची़ज अभी मौजूद है? वह कौन–सी ताक़त है, जो हाड़–माँस के इस शरीर को चलाती है और जब इससे निकल जाती है, तो मिट्टी का ढ़ेर बाक़ी रह जाता है? शव के साथ आप श्मशान भूमि पहुँचे। वहाँ उस जवान औरत की चिता के पास ही एक बूढ़े आदमी की लाश पड़ी थी। यह दृश्य देखकर ख़्याल आया कि मौत जवानी और बुढ़ापे में कोई फ़र्क नहीं देखती। थोड़ी दूर आगे एक स्मारक पर लिखा था– "ओ जाने वाले, कभी हम भी तेरी तरह चलते फिरते थे, लेकिन आज मिट्टी का ढ़ेर होके पाँव तले पड़े हैं।" एक के बाद एक, यह तीन दृश्य देखकर दिल को चोट लगी। इसके बाद रातों की नींद उड़ गई। प्रभु प्रियतम के वियोग में यह अवस्था बनी कि रात को आँसुओं

से सारा तकिया भीग जाता। इस तलाश ने कई रंग दिखाये। किताबें पढ़ी, हरेक समाज के धर्मग्रंथ पढ़े। साधु महात्माओं से मिले— क्या–क्या नहीं किया? यह सवाल आख़िर हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के चरणों में जाकर हल हुआ।

जीवन की पवित्रता, आत्म–निरीक्षण और निरन्तर अभ्यास से आपको त्रिकालदर्शिता प्राप्त हो गई— पीछे क्या हुआ, आगे क्या होने वाला है, सभी बातें साफ़ दिखाई देने लगीं। आपने प्रार्थना की, "हे प्रभु! मैं तो तुझे पाना चाहता हूँ। ये दैवी शक्तियाँ, जो तूने दया करके मुझे प्रदान की हैं, इनका शुक्रिया! इन्हें अपने पास रख। तुझसे यही माँगता हूँ कि मेरा जीवन एक साधारण व्यक्ति की तरह गुज़रे। दूसरे, यह कि यदि मेरे हाथों किसी का भला हो, तो मुझे उसका कोई अहसास न हो।" ये दो प्रार्थनायें 'कृपाल' के विशाल, प्रभु–प्रेम और विश्व–प्रेम से ओत–प्रोत हृदय की अनुपम झाँकी प्रस्तुत करती हैं।

सत्गुरु दयाल से भेंट

धर्मग्रंथों के अध्ययन से आप इस निष्कर्ष पर तो पहुँच चुके थे कि परमार्थ में सफलता के लिए गुरु का मिलना ज़रूरी है, पर हर वक़्त मन में यह धड़का लगा रहता था कि किसी अधूरे से वास्ता न पड़ जाए, सारा जीवन बर्बाद न चला जाए। इनके हृदय की सच्ची पुकार प्रभु ने सुनी और वक़्त के संत–सत्गुरु, श्री हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज का दिव्य स्वरूप इन्हें अन्तर में आने लगा। यह 1917 ई॰ की बात है, हुजूर बाबा सावन सिंह जी महाराज जी के चरणों में जाने से सात साल पहले की। बाबा सावन सिंह जी महाराज से मुलाक़ात भी एक विचित्र संयोग था। 1924 ई॰ की बात है, जब आप लाहौर में मिलिट्री अकाउन्ट्स के दफ़्तर में काम करते थे। नदी का तट देखने का शौक़ आपको ब्यास ले गया। हुजूर बाबा सावन सिंह महाराज के चरणों में पहुँचे, तो देखा कि ये तो वही महापुरुष हैं जिनका दिव्य स्वरूप सात साल से अन्तर में पथ–प्रदर्शन करता रहा था। पूछा, "हुजूर, श्री चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" हुजूर महाराज मुस्करा दिये। कहने लगे, "यही वक़्त मुनासिब था।"

आदर्श शिष्य

गुरु की तलाश में कड़ी से कड़ी कसौटी आपने अपने सामने रखी। जब वह मिल गया, तो तन, मन, धन सब कुछ गुरु को अर्पण कर दिया। गुरु भक्ति की और ऐसी की कि गुरु में अभेद हो गये। इनके महान कल्याणकारी जीवन की मोटी–मोटी बातों को भी बयान करने की यहाँ गुंजाइश नहीं है। वह करन–कारण प्रभु–सत्ता, उसे 'नाम' कहो, 'शब्द' कहो, जो मानव तन में प्रकट होकर जीवों का कल्याण करती चली आई है, इनके अन्तर में प्रकट होकर पूर्व से पश्चिम तक जीवों का प्रभु से जोड़ती रही। यह उसका प्रताप था कि भारत के सभी वर्गों जातियों व समाजों के अतिरिक्त यूरोप और अमरीका में सभी मतों के इसाइयों, इसराइल के यहूदियों, भारत, पाकिस्तान और अरब देशों के मुसलमानों, अफ़्रीका और अमरीका के हबशियों, तिब्बत, मलाया व अन्य पूर्वी देशों के बौद्धों का प्रेम प्यार व सम्मान उनको प्राप्त था। इनके दीक्षितों में विश्व के लगभग सभी देशों, जातियों, विचारधाराओं तथा समाजों के लोग शामिल हैं।

महाराज कृपाल सिंह जी को पुरबले संस्कारों तथा गुरु कृपा के प्रताप से देह स्वरूप में गुरु (परम संत श्री हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज) से मिलाप होने से सात साल पहले ही गुरुमुख की अवस्था प्राप्त हो चुकी थी। लम्बी खोज के बाद जब देह स्वरूप में सत्गुरु दयाल के दर्शन हुए, तो बरबस इनके मुख से निकला, "हुज़ूर! अपने चरणों में लाने में इतनी देर क्यों की?" कोई पूछ—ताछ नहीं, कोई सवाल–जवाब नहीं, सात साल से अन्तर दिव्य मंडलों में जो महापुरुष मार्गदर्शन करते रहे, उनसे सवाल–जवाब की गुंजाइश ही कहाँ रह गयी थी? शिष्य के सवाल के पीछे लंबी खोज की, विरह वेदना की, लंबी कहानी थी। गुरु के उत्तर में उसकी (गुरु के मानव तन में काम करने वाली प्रभु–सत्ता की) मौज या इच्छा का इशारा था, स्पष्ट संकेत था इस बात का कि इस सारी क्रिया में इन्सानी कोशिशों का दख़ल नहीं, यह उस परम सत्ता का काम है जो गुरु के चोले में प्रकट होकर जीवों का उद्धार अर्थात् उन्हें तन–मन से ऊपर लाकर प्रभु से जोड़ने और मिलाने का काम करती है। गुरु शिष्य की कहानी उस पहली मुलाक़ात ही में अपनी चरम सीमा में पहुँच गयी, किन्तु प्रभु रूप महापुरुषों का जीवन अपने

लिए नहीं, दूसरों के लिए हुआ करता है। वे ज़िंदगी की क़लम से लिखी एक खुली किताब होते है, जीवन–पथ के यात्रियों के मार्गदर्शन के लिए। अपनी जीवन यात्रा में वे जिज्ञासुओं के लिए पद चिन्ह छोड़ जाते हैं, इस लिए उनकी कहानी चरम पर पहुँच कर भी एक शुरूआत बन जाती है। जैसे अध्यापक प्राइमरी में प्राइमरी की, मिडिल में मिडिल की और एम.ए. में एम.ए. की योग्यता दर्शाता है, इसी तरह महापुरुष पूर्ण होते हुए भी गृहस्थी, जिज्ञासु, सेवक और शिष्य– सारे आदर्शों को अपने जीवन में प्रस्तुत करते हैं।

गुरु और गुरुमुख की कहानी

ग्रहणशीलता से पिता–पूत की, गुरु और गुरुमुख की कहानी शुरू होती है, जो विकास की विभिन्न स्थितियों से गुज़र कर उस मंज़िल पर पहुँचती है, जहाँ पिता–पूत में, गुरु और शिष्य में कोई अन्तर नहीं रह जाता और वह (शिष्य) सेंट पॉल के शब्दों में पुकार उठता है :

"It is I, not now I, it is Christ but lives in me."

अर्थात् "यद्यपि मैं वही हूँ, परन्तु अब 'मै' नहीं रहा, क्योंकि अब मेरे अन्तर में निवास करने वाला मसीह है।" यह प्रेम की पुरातन परम्परा है।

प्रेम गली अति साँकरी, ता में दो न समाहिं।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (प्रेम का अंग 10, पृ.44)

यहाँ दो से एक होकर चलना पड़ता है। शिष्य अपना अस्तित्व गुरु में लीन कर देता है। सूफ़ियों की परिभाषा में वह 'फ़ना–फ़िलशेख़' हो जाता है, गुरु में समा जाता है। जो प्रभु में समा गया वो (सूफ़ियों की इस्तेलाह या परिभाषा में) 'फ़ना–फ़िल्लाह' हो जाता है, प्रभु में समा जाता है। महाराज कृपाल सिंह जी के शब्दों में "गुरु God-man (प्रभु में अभेद) है, अर्थात् God (परमात्मा) जमा इन्सान। जो Guru-man अर्थात् गुरुमुख बन गया, प्रभु उस में आ गया कि नहीं?"

Receptivity या (गुरु से) ग्रहणशीलता जो संत कृपाल सिंह जी महाराज को पुरबले संस्कारों और गुरु कृपा की देन थी, उसे कैसे पैदा किया जाए? एक ऐसा शिष्य, जिसकी पिछली background या पृष्ठभूमि नहीं, उसे कैसे प्राप्त कर सकता है? इस संदर्भ में महाराज कृपाल सिंह

जी का मशहूर कथन सामने आता है, "एक इन्सान ने जो किया है, वही काम अन्य दूसरा इन्सान भी कर सकता है, यदि उसे सही मार्गदर्शन और मदद मिले।" उन के गुरुपद काल ही में नहीं शिष्यत्व काल में भी इस बारे में (गुरु से दिल से दिल को राह बनाने के बारे में) बहुत लोगों ने उनके मार्गदर्शन और सहायता से लाभ उठाया। अपने प्रवचनों और लिखतों में गुरु से यक़दिली बनाने का मज़मून को (जिसे वो परमार्थ का मूल और आधार मानते थे) ऐसा सुविस्तार और बोधगम्य स्पष्टीकरण उन्होंने किया है, और ऐसी पते की बातें बताई हैं कि अध्यात्म के पूरे साहित्य में कोई मिसाल नहीं मिलती। इस सिलसिले में गुरु–दर्शन पर वे बड़ा ज़ोर देते थे। गुरु दर्शन के बारे में बड़ी गूढ़ बातें आप बताया करते थे। दर्शन के प्रसंग में अपने सत्संग प्रवचनों में हुज़ूरे–पुरनूर उपासना का आदर्श प्रस्तुत करते थे (उप–आसन) अर्थात् पास बैठना। पास बैठना ये नहीं हैं कि,

मन दीया कहि औरही, तन साधन के संग।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (विभचारिन का अंग 6, पृ.31)

साधन के संग अर्थात् साधु के पास बैठना यह है कि दर्शन में इतना लीन हो जाए कि तन–मन की सुधि भूल जाए। अपने जीवन का दृष्टान्त प्रस्तुत करते हुए फ़र्माया करते थे :

"हुज़ूर अपने काम में लीन होते, मैं चुप–चाप बैठा देखता रहता। अभिनेता होता है ना, उसकी हर बात में अभिनय होता है, खाने–पीने में, उठने–बैठने में, बोलने–चालने में। एक तो उसका वास्तविक स्वरूप, जो वह स्वयं आप है (अर्थात् परमात्मा); एक जो वो बन के आया है, जो पार्ट वह करता है (अर्थात् इन्सान)। हमारी तरह ही मानव देह वह रखता है, लेकिन वह कुछ और भी है। वह सदेह–परमात्मा है। चित्तवृत्ति एकाग्र कर के चुप–चाप बैठे देखते रहो, तो God-in-man की, प्रभु–सत्ता जो गुरु के मानव तन में काम करती है, उसकी झलक मिलती है।"

जब आप श्री हुज़ूर महाराज जी के चरणों में जाते, तो 'दीदा शौ यक़सर' अर्थात् सर्वथा आँख बन जाते, अपलक नेत्रों से चुप–चाप देखते रहते। दर्शन में ऐसे लीन हो जाते कि तन–बदन की सुधि न रहती। पास बैठे लोगों को एक आनन्द की अनुभूति होती, मुफ़्त नशा मिल जाता।

एक दिन आप सत्गुरु दयाल के दर्शनों में लीन थे, कोई और वहाँ मौजूद न था। एक भक्त महिला ने देखा, तो शोर मचा दिया, "मैंने आप दोनों की चोरी पकड़ ली है।" सत्गुरु दयाल हंसकर कहने लगे, "क्या चोरी पकड़ ली है?" "आप दोनों देह में नहीं हो, उठकर आँखों में आ गए हो।"

ऐसे कई दृष्टान्त उनकी जीवन गाथा में मिलते हैं, जिन पर अमर जीवन की मुहर लगी हुई है, जो उन्होंने ख़ुद पाया और जिस का अंश दुनिया भर के परमार्थभिलाषियों को देते रहे। उनकी हर लिखत, हर कथन उनका, उस जीवन का, abundance of heart का, उनके करुणामय हृदय के अनन्त स्रोत का, रंग और असर लिए हुए है। उदाहरणार्थ उपरोक्त विषय (अर्थात् परमार्थ में रसाई, जो गुरु से एकात्मता की देन है), पर उनका ये सारगर्भित कथन, "मैंने सत्गुरु दयाल से कभी कोई सवाल नहीं किया। बस चुप–चाप बैठे दर्शन करता रहता। देखने–देखने में मुझे सब कुछ मिल गया, बिन मांगे मिल गया।"

जीवन की पड़ताल

जीवन की पड़ताल की डायरी परमार्थाभिलाषियों तथा सतपथ के यात्रियों को संत कृपाल सिंह जी महाराज की ख़ास देन है तथा यह उनके अपने जीवन, अनुभव और विश्व के सारे धर्मों–मज़हबों–मतों की शिक्षाओं के तुलनात्मक अध्ययन का निचोड़ है। उन्होने स्वयं सात साल की उम्र में डायरी रखना शुरू कर दिया था, जिसमें दिन भर की ग़लतियों की कड़ाई और बेलिहाज़ी से लिखते, और आगे के लिए उन ग़लतियों से बचने का यत्न करते। आगे चल कर जब उन्होंने गुरु पद पर कार्य शुरू किया, तो आत्म–निरीक्षण की डायरी को एक ऐसा वैज्ञानिक रूप दिया, जिसमें दुनिया के सारे धर्मग्रंथों और आज तक आए सारे महापुरुषों की शिक्षाओं का निचोड़ डायरी में प्रस्तुत कर दिया और अपने शिष्यों और सत्संगीजनों को डायरी के द्वारा अपनी त्रुटियों को चुन–चुन कर बाहर निकालने पर ज़ोर देते रहे। डायरी के विषय में आप फ़रमाते थे कि इन्सान कुछ भी न करे, सच्चाई के साथ केवल डायरी भरना शुरू कर दे, तो उसका जीवन पलटा खा जाएगा और दिल का दर्पण साफ़ हो कर सत्य की झलक उसमें पड़ने लगेगी। डायरी के बारे में हुज़ूर महाराज जी ने विस्तार के साथ कहा और

लिखा है। यहाँ उनका एक ही कथन दोहराना काफ़ी है कि "हमें पता ही नहीं हम कहाँ खड़े हैं। यह पता हो कि हम गंदगी में बैठे हैं, तो उससे निकलने की कोशिश भी करेंगे। हमें पता ही नहीं हममें क्या त्रुटियाँ है। अपनी त्रुटियों को देखें, तभी पता चले। अपनी तरफ़ नज़र मार कर देखें, तो दूसरों के दोष निकालने की फ़ुर्सत ही न मिले।"

अपने व्यस्त–अति–व्यस्त जीवन में उन्होंने कई किताबें लिखीं, जिनमें सबसे महत्त्वपूर्ण किताब, वर्तमान युग का महान धर्मग्रंथ, 'गुरुमत सिद्धांत' है। यह अमर रचना, जो गुरुमुखी भाषा में है, दो भागों में, दो हज़ार पृष्ठों में फैली हुई है। इसमें गुरुग्रंथ साहिब और दुनिया के सभी समाजों के धर्मग्रंथों के प्रमाण देकर सिद्ध किया गया है कि धर्मग्रंथ, जो आज तक लिखे गये और महापुरुष, जो आज दिन तक आए, सबकी मूलभूत तालीम एक ही है। इस महान ग्रंथ में दुनिया के सारे धर्मग्रंथों का सार प्रस्तुत किया गया है। पश्चिम के परमार्थाभिलाषियों के लिए आपने अंग्रेज़ी भाषा में कई ग्रंथ रचे। आपकी पुस्तकों का अनुवाद अंग्रेज़ी, जर्मन, फ्रेंच, स्पेनिश, इंडोनेशियन, रूसी और ग्रीक (भारत के अतिरिक्त विश्व की कुल 14 भाषाओं में) हो चुका है।

अध्यात्म का सार्वभौम प्रसार

36 वर्ष की सरकारी नौकरी के बाद, मार्च 1947 ई० में, आप डिप्टी असिस्टेन्ट कन्ट्रोलर ऑफ़ मिलिट्री एकाउन्ट्स के पद पर रिटायर हुए और उसके बाद, सत्गुरु दयाल हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के मिशन को पूरा करने में लगे रहे, जब वे 2 अप्रैल, 1948 ई० को अपना रूहानियत का, अर्थात् जीवों के कल्याण का काम, आपको सौंप कर परमधाम सिधार गये। गुरु के आदेशानुसार आपने 1948 ई० में रूहानी सत्संग और 1951 में दिल्ली में 'सावन–आश्रम' की स्थापना की, जहाँ जात–पात, रंग–वर्ण, देश व समाज के भेद–भाव के बग़ैर हरेक परमार्थाभिलाषी को, आत्मतत्व का व्यक्तिगत अनुभव उन्होंने प्रदान किया। धर्म को और प्रभु को मानने वाले लोगों को– वो किसी भी धर्म, देश, जाति, नस्ल के हों– आपस में जोड़ने और मिलाने की साँझी धरती, Common Ground, जो हुज़ूर बाबा सावन सिंह जी महाराज के ज़माने में क़ायम हो चुकी थी

और जिसके रूहानी फैज़ (पारमार्थिक लाभ) का सिलसिला (अर्थात् परमार्थाभिलाषियों को मन–इन्द्रियों से ऊपर लाकर आत्मानुभव प्रदान करने के कार्य का सिलसिला), जो भारत के कोने–कोने में और भारत से बाहर यूरोप, इंग्लैंड और अमरीका तक फैल चुका था, उस काम को उन्होंने अपने 26 वर्ष की पल–पल कार्यरत, व्यस्त–अति–व्यस्त रूहानी पादशाही में और आगे बढ़ाया और इतना आगे फैलाया कि यूरोप के लगभग सभी मुल्क़ों, अफ़्रीका के विभिन्न देशों, इंग्लैंड, (उत्तरी तथा दक्षिणी) अमरीका, कॅनेडा, पूर्व में मलाया, कोरिया, ऑस्ट्रेलिया, इंडोनेशिया आदि देशों में रूहानी सत्संग की 250 से ऊपर शाखायें उनके जीवन काल में स्थापित हो चुकी थीं।

विश्व यात्राएँ

1955 में उन्होंने पश्चिम–यूरोप, इंग्लैंड, अमरीका आदि की यात्रा की और लोगों को आत्मानुभव की दात दी। उस ऐतिहासिक विदेश यात्रा में उन्होंने, जो महान कार्य सार्वभौमिक स्तर पर उन्हें करना था, उसकी पक्की नींव रखी और अपने महान सत्गुरु की रूहानी दात के डंके सारी दुनिया में बजा दिये। पश्चिमी देशों में भाषण पर टिकट लगता है, जिसका एक हिस्सा वक्ता को मिलता है। महाराज जी ने हर जगह free talks (मुफ़्त व्याख्यान) दीं। लोगों ने उन्हें धन देना चाहा तो उन्होंने कहा, "क़ुदरत की सारी दातें— रोशनी, पानी, हवा— मुफ़्त हैं और सबके लिए हैं। रूहानियत (आत्मज्ञान) भी क़ुदरत की देन है; वह सब के लिए है और सबको मुफ़्त मिलेगी।" दो वर्ष पश्चात, 1957 में दिल्ली में वे सर्व–सम्मति से 'World Fellowship of Religions' ('विश्व सर्वधर्म संघ') के प्रधान चुने गये, जिसे उसके संयोजक, मुनि सुशील कुमार जी महाराज एक अन्तर्राष्ट्रीय संस्था का रूप देना चाहते थे। महाराज जी ने उसका संविधान बनाया और उस संस्था के अन्तर्गत जो चार विश्व सम्मेलन, 1957 में दिल्ली में, 1960 में कलकत्ता में और 1963 और 1970 में फिर दिल्ली में हुए, वे सब उनकी अध्यक्षता में हुए। इन सम्मेलनों के फलस्वरूप धर्मों का एक शक्तिशाली common platform या सयुंक्त मंच बना, विभिन्न धर्मों के लोगों के एक जगह मिल बैठने और विचार–विमर्श करने की प्रथा चली, जिससे आपस की ग़लतफ़हमियाँ दूर हुईं और लोग एक–दूसरे के क़रीब आने लगे, भेद–भाव

दूर हुए, धर्मांधता, ता'स्सुब, तंगदिली कम हुई और समन्वय और सहिष्णुता की भावना को बढ़ावा मिला। मगर उसके साथ ही लोगों में अपने–अपने समाज को आगे बढ़ाने की भावना बनी रही, बल्कि और मज़बूत हुई और ऐसी आवाज़ें सुनाई देने लगीं, "दुनिया भर के हिन्दुओं, एक हो जाओ; मुसलमानों, एक हो जाओ।" इस चीज़ को देखकर महाराज जी इस नतीजे पर पहुँचे कि अब इसके बाद एक और क़दम आगे बढ़ाना होगा।

धर्मों और मज़हबों का, सभी समाजों का– उद्देश्य तो यही है न कि इन्सान नेक–पाक–सदाचारी बनें, सही मा'नों में इन्सान बनें। यह सोचकर उन्होंने एक महान क्रान्तिकारी क़दम उठाने का फ़ैसला किया, जो 'मानव–केन्द्र' की स्थापना और 'विश्व मानव एकता सम्मेलन' के रूप में दुनिया के सामने आया।

1962 में ईसाईयों की डेढ़ हज़ार वर्ष पुरानी धर्म संस्था, 'Sovereign Order of St. John of Jerusalem, Knights of Malta' ने, जो मुस्लिम–ईसाई धर्मग्रंथों में 'Knights Templar' कहलाते थे, उन्होंने महाराज जी को 'Grand Commander' की उपाधि से सम्मानित किया। इसके लिए उन्हें अपने डेढ़ हज़ार वर्ष पुराने संविधान में संशोधन करना पड़ा। सिक्ख समाज के एक महापुरुष को धर्मवीर मानकर उन्होंने स्वीकार किया कि धर्म और आस्तिकता ईसाईयों का एकाधिकार नहीं। कॅथोलिक ईसाईयों के धर्मगुरु पोप ने आपसे भेंट करने के बाद ग़ैर–ईसाइयों से मेल–जोल बढ़ाने की घोषणा की और इस हेतु जो सलाहकार समिति बनायी, उसमें महाराज कृपाल सिंह जी का नाम भी शामिल किया।

1963 में हुज़ूर दूसरी बार विश्व यात्रा पर गये। तब तक रूहानी सत्संग की दो सौ शाखायें सारी दुनिया में फैल चुकी थीं। इस यात्रा में उन्होंने रूहानी सत्संग की शाखाओं का गठन किया, नई शाखायें स्थापित कीं, नए परमार्थाभिलाषियों को नामदान दिया और साथ ही 'मानव एकता सम्मेलन' और 'विश्व सर्वधर्म सम्मेलन' के common platform का संदेश लोगों को दिया। दूसरी विश्व यात्रा में हुज़ूर महाराज जी ने विभिन्न स्तरों पर काम किया। वे हुक्मरानों (विभिन्न देशों के सत्ताधीशों) से मिले और उन्हें बताया कि प्रभु ने लाखों लोगों की सुरक्षा और कल्याण का जो काम उन्हें सौंपा है, उसे पूरी ईमानदारी के साथ पूरा करें। यदि पड़ोसी देश

अव्यवस्थित या कमज़ोर पड़ जाए, तो वे उसकी मजबूरी का लाभ उठा कर उसका शोषण न करे, बल्कि उसकी सहायता करें। वे राजनीतिज्ञों, जन–नायकों, धर्माचार्यों, सभी से मिले। ईसाई समाज की प्राचीनतम धर्म संस्था से सम्मान प्राप्त करने के कारण उनके लिए सारे गिरजों के दरवाज़े खोल दिए गए थे और इस यात्रा की अधिकतर talks (प्रवचन) उन्होंने गिरजों में दी, बल्कि नामदान तक गिरजों में दिया; ये बात आज तक नहीं हुई थी। अगस्त 1972 से जनवरी 1973 तक, पाँच महीने की अपनी तीसरी और आख़िरी विश्व यात्रा में, हुज़ूर महाराज ने सिर्फ़ एक काम किया— खुले आम लोगों को नामदान देने का। उपदेश–प्रवचन के बाद अगले दिन सबको भजन पर बिठा दिया जाता और नामदान अभिलाषियों को, हरेक को नामदान दिया जाता।

मानव-केन्द्र की स्थापना

1969 में हुज़ूर महाराज जी की हीरक जयन्ती सब समाजों ने मिल कर मनायी। विश्व एकता और राष्ट्र नवचेतना के अग्रदूत और मार्गदर्शक का इससे बढ़कर अभिनन्दन नहीं हो सकता था कि उनकी हीरक जयन्ती का वर्ष 'राष्ट्रीय एकता वर्ष' के रूप में मनाया गया। सभी समाजों ने उस वर्ष राष्ट्रीय एकता के लिए निरन्तर प्रयत्नशील रहने का प्रण किया। महाराज जी मंच पर भाषण करके संतुष्ट हो जाने वाले नहीं थे। उसी वर्ष उन्होंने 'मानव–केन्द्र' की योजना बनायी। उसमें श्री काका साहिब कालेलकर, प० दीनानाथ दिनेश और अन्य महापुरुषों को साथ लिया और 1970 में, देहरादून में 'मानव–केन्द्र' का भव्य स्वरूप, भारत का सबसे बड़ा पक्का अंडाकार सरोवर, बाग़, अस्पताल आदि बनकर तैयार हो गये। हीरक जयन्ती के अवसर पर अपनी जन्मतिथि, छः फ़रवरी के अनुरूप, छः शब्दों में उन्होंने अपनी तालीम का जो निचोड़ पेश किया था, 'भले बनो, भला करो, एक रहो'— 'मानव–केन्द्र' उसका साकार स्वरूप था।

विश्व मानव एकता सम्मेलन

'विश्व सर्वधर्म सम्मेलन' के महान कार्य और उसके व्यापक प्रभाव का उन्हें पूरा अहसास था। लेकिन उन्होंने देखा और अपने प्रवचनों और किताबों में कहा और लिखा कि समाजों के विवेकवान लोग (नेता–गण,

धर्माचार्य) तो बहुत हद तक एक हो गए है और भेद–भाव से ऊपर उठ गए हैं, लेकिन उनके अनुयायियों में वो बात पैदा नहीं हुई। तभी उन्होंने धर्म की बजाय मानव और मानवता के आधार पर एकता सम्मेलन बुलाने का निश्चय किया। विश्व के इतिहास में अपने ढंग का यह पहला प्रयास था। इससे पहले सम्राट अशोक और हर्ष के ज़माने में जो सम्मेलन हुए, वे धर्म के आधार पर हुए थे। दिल्ली और पूरे देश में इतना बड़ा विश्व स्तर का सम्मेलन इससे पहले कभी नहीं हुआ था। विभिन्न देशों के पाँच सौ से अधिक प्रतिनिधि इसमें शामिल हुए। भारत के प्रतिनिधि उनके अतिरिक्त थे। इस सम्मेलन की एक बड़ी विशेषता यह थी कि यद्यपि इसके लिए धन और साधन 'रूहानी–सत्संग' ने जुटाये, लेकिन महाराज जी ने ये सम्मेलन रूहानी–सत्संग की तरफ़ से नहीं किया, बल्कि सब समाजों के सम्मिलित तत्वावधान में किया। उन्होंने सम्मेलन के आठ सचिव नियुक्त किए, जो विभिन्न समाजों का प्रतिनिधित्व कर रहे थे। महाराज जी के शब्दों में, "परमात्मा ने इन्सान बनाये। उसने मुहर (ठप्पा) लगा के नहीं भेजा कि यह हिन्दू है, यह मुसलमान। समाजें इन्सान ने बनाईं, इसलिए कि इन्सान सही मा'नों में इन्सान बने, नेक–पाक–सदाचारी बने, इन्सान इन्सान के काम आये, जिससे उसकी जीवन यात्रा सुख से व्यतीत हो और फिर सब मिलकर, जहाँ जिस समाज में जो कोई है, उसमें रहते हुए और अपनी–अपनी समाज मर्यादा का पालन करते हुए, उस लक्ष्य को पाये, जो मनुष्य जीवन का परम लक्ष्य और सब समाजों का साँझा आदर्श है। समाजें इन्सान के लिए बनी, इन्सान समाजों के लिए नहीं बना था; मगर वह मक़्सद किनारे रह गया। हम समाजों के उद्देश्य (मानव–निर्माण और प्रभु–प्राप्ति) को भूलकर अपने–अपने समाजों को ही बनाने–सँवारने में लग गए।" 'विश्व मानव एकता सम्मेलन' में हुज़ूर महाराज जी ने इन्सान और इंसानियत के आधार पर एकता का आदर्श पेश किया। उन्होंने कहा कि "इन्सान सब एक हैं। बाहर की और अन्दर की बनावट सबकी एक है। एक ही तरह से सब पैदा होते हैं और मरते हैं। वह हक़ीक़त सब में हैं, सबकी पैदा करने वाली, प्रतिपालक और जीवनाधार है। एकता तो आगे ही मौजूद है, मगर हम भूल गए हैं।" उस व्यापक जन्मजात एकता के आधार पर उन्होंने इन्सान इन्सान को मिलाने का ये महान प्रयास किया।

पहली अगस्त 1974 में (महाप्रयाण से 20 दिन पहले) भारत के संसद भवन में उनके सम्मान में एक सभा आयोजित की गयी, जिसमें उनका मानपत्र प्रस्तुत किया गया। इस सभा की अध्यक्षता संसद के स्पीकर श्री गुरदयालसिंह ढिल्लों ने की। संसद के इतिहास में ये पहला मौक़ा था, जब संसद सदस्यों की ओर से संसद भवन में एक आध्यात्मिक महापुरुष को सम्मानित किया गया।

संत कृपाल सिंह जी महाराज ने विभिन्न स्तरों पर और दिशाओं में विश्व में नव जाग्रति और नव चेतना के जो बीज बोए, वे एक दिन फल लायेंगे और वह वक़्त आ गया है। जैसा कि वे आख़िरी दिनों में कहा करते थे, "सतयुग कोई आसमानों से फट पड़ने वाला नहीं, कलयुग के घोर अंधकार ही से उसका अभ्युदय होगा, और वह दिन दूर नहीं। यह जो नयी चेतना, नयी जाग्रति सब समाजों में दिखाई दे रही है, वह प्रभु–प्रेरणा से है और सतयुग के अभ्युदय की निशानी है।"

सावन-कृपाल दयाधारा का नया दौर

हुज़ूर संत कृपाल सिंह जी महाराज अपने जीवन की संध्या–बेला अक्सर कहा करते थे कि मेरा मिशन मेरे बाद भी जारी रहेगा और दिनों–दिन आगे बढ़ेगा और फैलेगा। आज, उनके अनामी पद लीन होने के दस साल बाद, "सावन–कृपाल रूहानी मिशन" के अंतर्गत हम इन दो महापुरुषों की विशाल दयाधारा को नयी–नयी दिशाओं में बढ़ते–फैलते देख रहे हैं। इतनी तेज़ी से काम आगे बढ़ा–फैला है कि देख कर अक्ल चक्कर खाती है। आज वही कार्य संत दर्शनसिंह जी महाराज के उत्तराधिकारी, संत राजिन्दर सिंह जी महाराज की देखरेख में चल रहे हैं।

सच्चे जिज्ञासु को सम्बोधन

"एकं सद्‌विप्रा बहुधा वदंति," यह उपनिषद् का कथन है, जिसका अर्थ है कि सत्य तो एक ही है, परन्तु संतों, महात्माओं ने उसे अनेकों प्रकार से वर्णित किया है। परन्तु 'सत्' को परिभाषित करना, असीमित को सीमित करना होगा, क्योंकि सत् को सीमा में नहीं बाँधा जा सकता और अपने स्वभाव के अनुसार यह सदा ही अपरिभाषित रहता है। वास्तव में यह बौद्धिक स्तर पर जानने तथा समझने का विषय नहीं, अपितु एक आंतरिक अनुभव का विषय है।

प्रसिद्ध दार्शनिक, हेनरी बर्गसन (Henri Bergson) कहते हैं कि सत् को पाने को, सबसे पक्का तरीक़ा यह है कि पहले–पहल उसे समझने की कोशिश करो तथा कुछ सीमा तक तर्क–विर्तक भी, पर उसके पश्चात! मृत्यु की परवाह न करते हुए, पूरी शक्ति और तन्मयता से सत् के कुंड में छलाँग लगा दो और स्वयं उसका अनुभव करो।

जैसा कि बेन जॉन्सन (Ben Jonson) कहते हैं :

> *सच्चा ज्ञान, आत्मा की प्रक्रिया है और इंद्रियों के बिना ही वह पूरी तरह जाना जा सकता है।*

सत् को न तो इंद्रियों से जाना जा सकता है, न मन से, न बुद्धि से और न ही प्राणों से, जोकि इस स्थूल ढाँचे को और पूरे संसार को सुचारु रूप से क्रियान्वित रखता है।

> *मनुष्य स्वयं में एक छोटी सी दुनिया है, जिसे बड़ी चतुराई से तत्वों द्वारा निर्मित किया गया है और जिसमें एक दैवी आत्मा अंतर्निहित है।*
>
> — जॉन डॉन्न (John Donne)

वह अपने आप में सम्मिश्रण है— स्थूल, सूक्ष्म और कारण तत्वों का, अर्थात् शरीर, मन, ब्रह्मंडी मन और आत्मा का, जो एक दूसरे के पीछे रहकर इंसान को

बनाते हैं और इनमें से आख़िरी, यानी आत्मा, समस्त जीवन का स्रोत है और यह वही जीवन सत्ता है, जो संसार में सभी जीवित वस्तुओं को जीवित रखती है।

सभी में व्याप्त पाशविक प्रवृत्तियों के होते हुए भी, कुछ चुने हुए व्यक्तियों को कोई गुप्त इच्छाशक्ति इन प्रवृत्तियों से परे होने को प्रेरित करती है, जिससे एक ओर तो वे इन पाशविक प्रवृत्तियों के प्रति पूर्णतः उदासीन हो जाते हैं, और दूसरी ओर मृत्यु के प्रति स्वाग्रही आत्म–समर्पण, यद्यपि इसके लिए उन्हें अपनी प्रेरित आत्मा के विरुद्ध बाहरी प्रवृत्तियों और अहंकार की ओर से कड़ा विरोध भुगतना पड़ता है। रहस्य और रहस्य के बीच में, यानी अज्ञात आत्मा और अज्ञात सत् (प्रभु) के बीच में एक सूक्ष्म पुल बन जाता है, और जीवन के एक विशेष मोड़ पर वह गुप्त सत्, अज्ञान के परदे को फाड़ कर बाहर निकल आता है; और ऐसा तभी होता है, जबकि व्यक्ति जीवन के बंधनों की क़ैद से अपनी आत्मा को छुड़ा लेता है। जॉन कीट्स (John Keats), जोकि शृंगार रस के एक महान कवि हुए हैं, इस आनंदमयी अवस्था का वर्णन इस प्रकार करते हैं :

> *प्रसन्नता कहाँ निहित है? उस अवस्था में कि जिसमें निपुण मन दैवी भाईचारे की ओर मुड़ने लग जाए, सार तत्व से जुड़ने लग जाएँ, जब तक कि हम स्वयं भी देश(–काल) की क़ैद से मुक्त न हो जाएँ और उस दिव्य–सत्ता की ज्योति में मिलकर उस जैसे ही चमकने न लग जाएँ।*

इस तरह से सत् का रहस्य स्वयं मनुष्य के अपने आपे में छुपा है, उस 'महान आपे' में छुपा है। पर यदि वह आत्मा– वह अल्प सी वस्तु, जिसका कोई महत्व न हो, जिसे परे करके फेंक दिया गया हो और लगभग मन–माया (पदार्थ) के महान भँवर में लगभग खो दिया गया हो, वह यदि इस जीवन की क़ैदख़ाने से बाहर निकल कर अपने आपको पहचान कर होश में आ सके, तो यह एक महान वस्तु है। यह क़ैदख़ाना इंद्रियों से बना है और ये इंद्रियाँ आत्मा को अपने मायाजाल अथवा इंद्रजाल में सदा फँसाये रखती हैं। इसलिए अंतरीय मनुष्य (मनुष्य में बसती आत्मा) को बाहरी मनुष्य (जोकि मन और जड़ तत्वों से बना है) आज़ाद करना होगा, ताकि आत्मा अपने आपको जान सके और फिर, ब्रह्मांडीय चेतना के प्रति जागरूक हो सके। यह सब कुछ एक पक्का व्यावहारिक ज्ञान है, जिसका अनुभव आत्म– विश्लेषण की प्रक्रिया द्वारा, देहाभास से ऊपर उठकर, किया जा सकता है– जो मात्र कल्पित वस्तु नहीं है, जैसा कि हममें से

अधिकतर सोचते हों। क्योंकि 'परमात्मा के ज्ञान' से पहले 'आत्म–ज्ञान' आवश्यक है, इसलिए अनादि काल से ही सभी संतों–महात्माओं ने अपने आपको जानने पर ज़ोर दिया (जैसा कि पुरातन यूनानियों व रोमियों के बीच क्रमशः कहा गया, 'gnothi seauton' व 'nosce te ipsum')। और अपने आपको जानने के लिये यह आवश्यक है कि व्यक्ति अपनी सुरत को इंद्रियों के घाट की ज़िंदगी से पृथक् करे। ईसा मसीह भी इसी बात की ओर इशारा कर रहे थे, जब उन्होंने अपने शिष्यों से कहा :

> जो अपने जीवन को पाना चाहेगा, उसे यह सांसारिक जीवन खोना पड़ेगा।

और,

> जो इस बाहरी जीवन को आंतरिक जीवन के लिये खो देगा, वह उसे पा जायेगा।
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती, 10:39)

इस प्रकार एक व्यक्ति को दोनों तरह के जीवन में से एक को चुनना होता है : एक ओर तो जिस्म–जिस्मानियत और इंद्रियों के घाट का जीवन है, तो दूसरी ओर आत्मिक चेतना का जीवन, क्योंकि एक साथ व्यक्ति दोनों प्रकार का जीवन नहीं जी सकता; और जब तक व्यक्ति शारीरिक चेतना से ऊपर न उठे, वह दोनों जीवनों में से किसी एक का चुनाव नहीं कर सकता।

> कोई भी व्यक्ति, दो मालिकों की सेवा नहीं कर सकता, क्योंकि या तो वह उनमें से एक से प्यार और दूसरे से घृणा करेगा, अथवा वह एक को ग्रहण करेगा और दूसरे को छोड़ देगा। व्यक्ति प्रभु व शैतान– दोनों की सेवा नहीं कर सकता।
>
> – पवित्र बाइबिल (मत्ती, 6:24)

गुरु नानक साहिब ने कहा है :

> *जन नानक बिनु आपा चीनै मिटै न भ्रम की काई।।*
>
> – आदि ग्रंथ (धनासरी, म॰9, पृ॰684)

यह है 'सत्' या प्रभु की ओर जाने वाला रास्ता। गुरु नानक साहिब कहते हैं कि सत् एक है और वह सिर्फ़ सत्गुरु के माध्यम से एक दात की तौर से मिलता है। जब हम उसे 'एक' कहते हैं, तो यह भी ग़लत है, क्योंकि उसका अर्थ

है, असीम को सीमित कर देना। परमात्मा अथवा सत् के बारे में कबीर साहिब हमें बतलाते हैं :

एक कहूँ तो है नहीं, दो कहूँ तो गारि।
जैसा है तैसा रहे, कहे कबीर विचारि।।

'एक' की संख्या केवल महान उस सत्ता का सूचक मात्र है, जोकि स्वयं में संख्या–गणना से परे है। सत् का वर्णन करते हुए गुरु नानक हमें बतलाते हैं :

आदि सचु जुगादि सचु।। है भी सचु नानक होसी भी सचु।।
– आदि ग्रंथ (जप जी 1, पृ॰1)

'पूर्ण सत्य' वास्तव में प्रतिमारहित है, परन्तु जब यह इज़हार में आया, इसके मूल व्यक्त स्वरूप 'ज्योति व श्रुति' हुए, जोकि सामूहिक रूप से वेदों में 'नाद' कहे गए हैं, उपनिषदों में 'उद्गीथ', ज़ेन्द अवेस्ता में 'स्त्रोशा', सुसमाचारों मे 'वर्ड', कुरान में 'कलमा', पवित्र ग्रंथ में 'नाम' या 'शब्द', जो सभी दिव्य प्रकृति या प्रकृति के सृजनकारी सिद्धांत को इंगित करते हैं।

वह अनाम व सभी रूपों से रहित है। फिर भी, सभी नाम और रूप उसी के हैं।

मयाने इस्मो मुसम्मा चू फ़र्क़ नेस्त ब बीं।
तू दर तजल्लीए इस्मा जमाले नामे ख़ुदा।

जैसा हमें बतलाया जाता है, महान पुरातन ऋषि–मुनियों को 'सत्य' या 'प्रभुत्व' का आंतरिक अनुभव प्राप्त था। मूसा को दिव्य 'दस नियमों' की प्राप्ति गर्जन व लपटों के बीच, जोकि सत्य के द्विपक्ष हैं, हुई थी। हज़रत मोहम्मद साहिब को चाँद को दो टुकड़ों में काटकर रास्ता बनाना पड़ा (शक़–उल–क़मर), जब वे बुराक़ अथवा कौंधती बिजली के घोड़े पर सवार होकर ऊपर के मंडलों में चढ़े। राजकुमार सिद्दार्थ को भी आंतरिक ज्योति का साक्षात्कार हुआ और तब वे 'बुद्ध' यानी बोध (ज्ञान) प्राप्त कहलाये। ईसा ने अपने शिष्यों को बड़े स्पष्ट शब्दों में कहा :

मैं संसार की ज्योति हूँ और जो कोई मेरा अनुसरण करेगा,
वो अँधेरे में नहीं रहेगा, बल्कि उसे जीवन की ज्योति प्राप्त होगी।
– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना, 8:12)

और फिर,

यदि तुम्हारी आँख एकल हो जाये, तो तुम्हारा सारा शरीर ही ज्योति से भर जायेगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती, 6:22)

श्री डीन इंगे कहते हैं कि अध्यात्म–विद्या धर्म का सार है। इंद्रियातीत रहस्यमयी आत्मिक अनुभवों को हम किसी भी भाषा में बयान नहीं कर सकते।

ज्योति अंधेरे में प्रकाशित होती है, और अंधेरा उसे अनुभव नहीं कर पाता!

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना, 1:5)

— आम आदमी का हाल आजकल इस तरह का है। ए.सी. ब्रॅडले कहते हैं :

गहनतम संघर्षों व नकारात्मकताओं के बीच भी मनुष्य की आत्मा वापिस प्रभु तक पहुँच सकती है....इसके लिए उसे अपने नाशवान अस्तित्व को भूल जाना होगा।

वॉल्टर–द–ला मेर अपनी पुस्तक, स्वप्न की एक कविता में कहते हैं :

और एक बार जब पीड़ा और वेदना से स्वतंत्र हुआ, तो मैंने रात्रि के गर्भ में तीव्र ज्योति के खोखले मंडल का अनुभव किया, जो सुंदरता से भरपूर था, जिसकी ख़ुशी के अनुभव को ज़ुबान द्वारा बयान नहीं किया जा सकता और मैंने यह जाना कि वही जीवन के क़िले के समान है।

आत्मा और परमात्मा— दोनों ही इंसानी जिस्म के पवित्र मंदिर में निवास करते हैं; परन्तु अफ़सोस! दोनों एक दूसरे से बात नहीं करते। इस पैदाइशी रिश्ते के बारे में सेंट कैथरीन हमें बतलाती हैं :

प्रभु जीवात्मा के भीतर है और जीवात्मा परमात्मा के भीतर— ठीक उसी प्रकार जैसे कि समुद्र मछली के भीतर है और मछली समुद्र के भीतर।

परन्तु क्या हम इस परमानन्द से भरे दर्शन को प्राप्त सकते हैं? संत–सत्गुरु कहते हैं, "हाँ, ठीक उसी तरह, जैसे कि दो और दो मिलकर चार होते हैं।"

जब हम ऐसी चीज़ों को अनुभव करते हैं, तो हम एक प्रकार की एकत्व की अवस्था में होते हैं, जिसमे पहुँच कर हमारी आत्मा सुदूर ऊँचाइयों में उड़ रही होती है।

– जॉन कीट्स (John Keats) की एक कविता से

अब जिस बात से हमने शुरू किया था, उसी बात पर वापिस आ जाते हैं– कि सत्य असीमित है और केवल अंतर्मुख होकर उसका अनुभव किया जा सकता है, न कि बुद्धि के द्वारा समझा जा सकता है। आइये, अब हम विज्ञान के दावों की चर्चा करें। विज्ञान का यह कहना है कि वह भी, निष्पक्ष और तटस्थ रहकर यानी वैज्ञानिक तरीक़े से, सत्य तक पहुँचने का प्रयास करता है और इसके अधिकतर मानने वाले यहाँ तक भी कहते हैं कि सत्य को पाने का मार्ग एकमात्र विज्ञान ही है, क्योंकि अध्यात्मवाद और आत्मिक अनुभव बहुत ही अधिक व्यक्तिगत हैं, निजी हैं, और वे इतने दुर्लभ अनुभवों से संबंध रखते हैं कि उन पर यक़ीन नहीं किया जा सकता। लेकिन क्या विज्ञान दरअसल में हमें सच्चाई तक पहुँचा सकता है? क्या हम विज्ञान के तथ्यों की बराबरी (परम) सत्य से कर सकते हैं? क्या सत्य से तात्पर्य, सृष्टि में मौजूद विभिन्न पदार्थों के ज्ञान के अलावा उनके आपसी सूक्ष्म से सूक्ष्म संबंधों की जानकारी से नहीं, और क्या सत्य का यह दूसरा पक्ष अधिक मुख्य व महत्त्वपूर्ण नहीं? विज्ञान निःसन्देह हमें विभिन्न पदार्थों के बारे में तथ्यपूर्ण ज्ञान प्रदान करता है और कुछ सीमा तक उनके आपसी संबंधों के बारे में भी बताता है। परन्तु कम से कम आजकल, विज्ञान तो एक अन्तहीन प्रक्रिया है, जिसमें आज की खोज कल जाकर पुरानी पड़ जाती है, और इस तरह से सत्य की तस्वीर– चाहे वह कैसी भी हो– सदा बदलती रहती है। वास्तव में यह सत्य की तस्वीर हो ही नहीं सकती, क्योंकि सत्य, अपनी प्रकृति के अनुसार, तो परिवर्तनहीन है। विज्ञान के मानने वाले, विज्ञान की इस बहुत बड़ी कमज़ोरी को समझने में असफल रहे हैं, क्योंकि वे बाहरी ज्ञान को ही सत्य मानने की ग़लती कर बैठते है और वे ये भूल जाते हैं कि यदि सत्य को पाने का यह एकमात्र साधन होता, तो मनुष्य कभी भी उस लक्ष्य तक पहुँचने की कोशिश नहीं कर पाता। यदि हम तस्वीर के दूसरे पहलू को देखें, जिसका हम पहले ज़िक्र कर चुके हैं, तो हम संत–महापुरुषों की साक्ष्य पायेंगे कि मनुष्य सत्य का अनुभव पा सकता है, परन्तु बाहरी ज्ञान की खोज हमें इस उद्देश्य से परे करती है। कवियों ने भी उन

शांत क्षणों का ज़िक्र किया है, जब उन्होंने भौतिक भिन्नता के पीछे आध्यात्मिक एकता की मौजूदगी को महसूस किया है :

> *और मैंने अनुभव किया है, ऐसी विचारधारा का, जो मुझे प्रसन्नता से भर देती है, एक ऐसी सूक्ष्म भावना का, जो बहुत ही अधिक गहनता से अंतरतम में भर जाती है, जिसका निवास है अस्त होते सूर्य की रोशनी में, पृथ्वी के इर्द–गिर्द फैले विस्तृत सागरों में, वायु में, नीले प्रकाश में और मनुष्य के मन में।*
>
> — वर्ड्स्वर्थ (Wordsworth) की एक कविता से

हर युग में और हर काल में आये संत–महात्माओं ने हमें एक ही स्वर में बतलाया है कि यह आंतरिक सत्य, बौद्धिक तर्क–विर्तक अथवा भावनाओं का विषय नहीं है, बल्कि इंद्रियातीत अनुभव है, और इसी संदर्भ में योग, विशेषकर 'सुरत–शब्द योग', की महत्ता है। यदि हम वास्तव में सत्य को खोजना चाहते हैं, तो आध्यात्मिकता को नज़रअंदाज़ नहीं कर सकते, जैसी कि अनेक आधुनिक विचारकों की प्रवृत्ति रही है, क्योंकि यही सत्य को पाने का महामार्ग है; और जैसा कि प्रस्ताव किया जा चुका है, एकमात्र महामार्ग है। जब वह अशब्द, अनाम प्रभु इज़हार में आया यानी प्रकट हुआ, तो 'शब्द' या 'नाम' कहलाया और इससे सारे खंड–ब्रह्मंड बने, और यही ताक़त संपूर्ण सृष्टि का संचालन कर रही है। सत्गुरुओं के द्वारा इसके प्रति उपयुक्त अलग–अलग नामावली के चयन के बावजूद, इस पुस्तक में, अपने मूल स्वरूप में यह शब्दरहित सत्ता– जो अंतहीन सृष्टि का सृजन, पालन व नियंत्रण करती है– के इस मूलभूत सिद्धांत को वर्णित करने का प्रयास किया गया है।

उन सभी महानुभावों को, विशेषकर श्री भद्रसेन जी को, मैं हृदय से धन्यवाद देता हूँ, जिन्होंने अपने अमूल्य समय का योगदान दिया और बड़ी कठिन प्रेममय श्रम साधना से इस पुस्तक के प्रकाशन में सहायता की।

— कृपाल सिंह

विषय-सूची

भाग – 1

अध्याय – 1

अध्याय – 2

अध्याय – 3

अध्याय – 4

अध्याय – 5

भाग – 2

अध्याय – 6

अध्याय – 7

अध्याय – 8

अध्याय – 9

अध्याय – 10

अध्याय – 11

अध्याय – 12

अध्याय – 13

अध्याय – 14

अध्याय – 15

अध्याय

: **1** :

परिचय

'नाम' शब्द जितना कहने में आसान है, उतना समझने व अनुभव करने में नहीं। केवल कोई नाम के रहस्यों में निपुण, अनुभवी समर्थ महापुरुष ही 'नाम' के अभिप्राय व उसमें निहित महान शक्ति को जान कर सकता है। प्रत्यक्ष तौर से तो यह केवल एक शब्द ही है, परन्तु इसका तात्पर्य सर्वाधिक पढ़े–लिखे पुस्तक–ज्ञानियों की समझ से भी परे की वस्तु है; फिर भी, कोई ऐसे की, जो कि 'नाम', 'शब्द' अथवा 'वर्ड' का न केवल बौद्धिक ज्ञान, वरन् प्रत्यक्ष अनुभव भी रखता हो, कृपा द्वारा उसको ग्रहण करना संभव है।

'नाम' व 'नामी' वास्तव में एक ही हैं। दोनों में से एक अमूर्त रूप है, तो दूसरा स्थूल मूर्त रूप, और इस प्रकार मुश्किल से ही उनमें कोई अंतर है। ज्योति को सूर्य से पृथक् नहीं किया जा सकता। संसार भर में दोनों इकट्ठे ही रहते हैं। इसी तरह प्रभुत्व (Godhood) और प्रभु (God), दोनों को अलग करके अलग–अलग सील बंद पेटियों डाला नहीं जा सकता। पहला, दूसरे का गुण विशेष है। 'नाम', परमात्मा के प्रभुत्व से किसी भी तरह से न तो कम ही है और न ही अधिक। उसे 'Holy Spirit' ('पवित्र आत्मा'), 'Comforter' ('सांत्वनादाता') आदि, जो कोई कुछ कहना चाहें, कहा जा सकता है। यह परमात्मा का मूल प्राकट्य रूप है, जो कि समस्त सृष्टि की रचना का कारण है। परमात्मा का यह आदि स्वरूप ही है, जिसके बारे में सेंट जॉन इस प्रकार कहते हैं :

> *सृष्टि के आदि में 'शब्द' ('वर्ड') था, 'शब्द' परमात्मा के साथ था और 'शब्द' ही परमात्मा था। आदि में वही परमात्मा के साथ था। सभी पदार्थ उसी से निमृत हुए और ऐसा कुछ*

भी नहीं था, जो कि उससे न बना हो। उसके अंदर जीवन
था और वह जीवन ही मनुष्य की ज्योति थी; और वह ज्योति
अंधकार में दमकती है; और अंधकार उसे जानता तक नहीं।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-5)

इन स्मरणीय शब्दों के साथ, 'नाम' की भव्य प्रकृति के बारे में हमें कुछ बताने का सेंट जॉन ने प्रयत्न किया हैं। अपने आप में ये हिंदू धर्म में वर्णित ब्रह्मा, विष्णु और महादेव– सृष्टि की रचना, पालन व संहार करने वाली तीनों शक्तियों का एकत्व स्वरूप– जिसकी क्रियाशक्ति प्रभुत्व या क्रियाशील–प्रभु, 'नाम' अथवा 'वर्ड में निहित है– को समाविष्ट करता है।

इस संदर्भ में मुस्लिम सूफ़ी संत, हज़रत मोइनुद्दीन चिश्ती कहते हैं :

म्याने–इस्म–ओ मुसम्मा चू फ़र्क नीस्त ब–बीं।
तू दर तजल्ली–ए–अस्मा जमाले–नामे–ख़ुदा।

– दीवाने–ग़रीब नवाज़ (पृ.17)

(पर 'नाम' और 'नामी' एक ही हैं; 'नाम की ज्योति' उस परमात्मा की महिमा की साक्षी है।)

जो कुछ सृष्टि भी में है, सभी 'नाम' से ही है, क्योंकि यह सर्वव्यापी है। समस्त सृष्टि का ये जीवन सिद्धांत है। जिसमें 'नाम' व्यक्त रूप हो जाता है, उसे 'संत' कहा जाता है, क्योंकि यह कहा गया है कि,

'शब्द' सदेह हुआ, और हमारे बीच में रहा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:14)

ऐसे महापुरुष ने, कि जिसने जीवन का परम अर्थ पा लिया और मानव–अस्तित्व का अंतिम ख़ज़ाना प्राप्त कर लिया, उसके लिये अधिक कुछ अन्य इच्छित और वांछित शेष नहीं रहता। दूसरी ओर, ऐसा व्यक्ति, जो कि 'नाम' से संबंध स्थापित करे बिना ही शरीर को त्याग देता है, वह उस हारे हुए जुआरी की तरह होता है, जो कि जुए के अड्डे को ख़ाली हाथ होकर छोड़ता है। संत कबीर हमें बतलाते हैं :

नाम जपत कुष्ठी भला, चुइ चुइ परै जो चाम।
कंचन देह केहि काम की, जा मुख नाहीं नाम।।

– कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (नाम का अंग 35, पृ.86)

'नाम' की महत्ता और इसकी आवश्यकता :

रूहानी मंडलों में 'नाम' के पंखों पर उड़ान के बग़ैर नहीं पहुँचा जा सकता। एक फ़ारसी कवि कहते हैं :

तुरा सज्दे-तैराँ दर फ़ज़ा-ए-आलमे कुद्स,
बशर्त-ए-आँकि ब पर्रे बबाले-नामे-ख़ुदा।

— दीवाने-ग़रीब नवाज़ (पृ.17)

(उच्चतर आध्यात्मिक-रूहानी मंडलों में उड़कर जाना तुम्हें शोभा देता है, परन्तु बिना 'नाम' के पंखों की मदद से तुम नहीं पहुँच सकते।)

और फिर,

विसाले-हक़्क़ तलबी हमनशीने-नामश बाश,
बुवद विसाले-ख़ुदा दर विसाले-नामे-ख़ुदा।
यक़ीं बदाँ कि बा हक़ निशस्ता-ए-शबो-रोज़,
चू हमनशीने-तू बाशद ख़याले-नामे-ख़ुदा।

— दीवाने-ग़रीब नवाज़ (पृ.17)

(यदि तुम सत्य के साथ जुड़ना चाहते हो, तुम्हें 'नाम', से जुड़ना होगा, क्योंकि यही सत्य से [जो कि अव्यक्त रूप सत्य का व्यक्त रूप है] जुड़ने का एकमात्र ज़रिया है, 'नाम' पर निरंतर ध्यानाभ्यास से ही 'नामी' का निरंतर सहचर्य मिलता है।)

दैवी-धारा के एक स्पर्श से ही व्यक्ति के मन की सभी दुष्ट भावनाएँ धुल कर पवित्र हो जाती हैं। सभी शंकाओं और व्याकुलताओं का नाश होकर, मन स्थिर और दृढ़ निश्चयी बन जाता है, जिसके परिणामस्वरूप परमात्मा की ज्योति की झलक उसके अंदर परावर्तित हो उठती है।

जमाले-दोस्त ज़ आइना-ए-दिलत ताबद,
अगर जूद दिह शवद अज़ सक़ाले-नामे-ख़ुदा।

(यदि तुम अपने मन के शीशे को उस प्रभु के नाम के स्मरण से साफ़ कर डालो, तो उसकी शान उसकी ज्योति तुम्हारे अंतर में निश्चय ही चमक उठेगी।)

'नाम' के अनमोल मूल्यों को संत कबीर साहिब ने बड़े ही सुंदर शब्दों में बयान किया है :

नाम जो रत्ती एक है, पाप जो रती हज़ार।
आध रती घट संचरै, जारि करै सब छार।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (नाम का अंग 26, पृ.85)

नाम जपत सब मिट गए, मन मनसा के दाग।
मानो घास के ढेर में, लागी चिणगी आग।।

नाम जपत सब जर गए, मन माया के फंद।
देखत देखत मिट गए, सब प्रपंच के द्वन्द।।

— संत कबीर

नव निधि नामु निधानु रिधि सिधि ता की दासी।।

— आदि ग्रंथ (सवैए म०4, पृ.1397)

जा की गाँठी नाम है, ता के है सभ सिद्धि।
कर जोरे ठाड़ी सबै, अष्ट सिद्धि नव निद्धि।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (नाम का अंग 33, पृ.86)

'नाम' से संबंध स्थापित होने पर सभी की मुक्ति निश्चित है— चाहे वह अच्छे रहे हों या बुरे, पढ़े–लिखे हों या अनपढ़। जैसे सूरज और आग गर्मी और उजाला सभी को प्रदान करते हैं, जैसे हिम और बर्फ़ सभी को आह्लादक ताज़गी प्रदान करते हैं, इसी प्रकार 'नाम' भी अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रह सकता, चाहे यह संबंध और ता'ल्लुक कैसे भी हासिल हो, चाहे ग़लतियों से ही क्यों न हो। हज़रत ख़्वाजा मुइनुद्दीन चिश्ती फ़रमाते हैं :

रबूद जानो–दिलम रा जमाले नामे ख़ुदा,
नवाख़्त तिशना लबां रा जलाले नामे ख़ुदा।

– दीवाने–ग़रीब नवाज़ (पृ.17)

('परमात्मा के नाम' की शान ने मेरे शरीर और आत्मा को यकरंग कर लिया है, जिससे भूखे और प्यासे लोगों को शहद भरा 'अमृत' प्राप्त होता है।)

परमात्मा के विविध नाम :

संतों, महात्माओं ने परमात्मा को अनंत प्रकार की शब्दावली से पुकारा है, जैसे उदाहरण के लिए— स्वामी या सोआमी (प्रभु), निराला (जिसका कि कोई मुक़ाबले का न हो), अनामी (जो नाम रहित हो), हरिराय, अगम अथवा अलख (जो समझ के परे हो, जिसे लखा न जा सके), रामराय अथवा सत्पुरुष (जो सदा ही सत्स्वरूप रहे अथवा जो सदा एकरस रहता है),

एकंकार (जीवन का एक प्राण अथवा जीवनतत्व), पूर्ण चेतन पुरुष (संपूर्ण चेतनता), अकाल (समय की सीमा से परे अथवा जिसकी मृत्यु न हो सके)।

ये सभी गुणवाचक नाम परमात्मा के किसी न किसी गुण या विशेषता को इंगित करते हैं। ऐसे 'नाम' सिर्फ़ प्रभु के किसी एक पक्ष का वर्णन करते हैं, जो कि किसी को व्यक्तिगत रूप से सबसे अधिक भाता हो। पवित्र धर्मग्रंथों में ऐसे हज़ारों–सहस्रों नाम वर्णित हैं– जैसे कि, राम (सर्वव्यापी), रहीम (कृपालु, दयालु), गिरधारी (सबको घेरे रखने वाला), मुरारी, अल्लाह, ख़ुदा (जो स्वयं ही आता हो), वाहेगुरु, और इसी प्रकार अन्य भी। यहूदी उसे याहवेह (या जहोवाह) पुकारते हैं। ये सभी नाम हमारे लिये श्रद्धा योग्य हैं, क्योंकि उनमें से प्रत्येक ही उस प्रियतम परमात्मा के किसी न किसी पक्ष को उजागर करता है।

बलिहारी जाउ जेते तेरे नाव है।।

– आदि ग्रंथ (बसंत, म॰1, पृ॰1168)

'नाम' क्या है?

'नाम' के बारे में हम बहुत कुछ कहते–सुनते हैं, परन्तु कभी भी क्षण भर के लिये भी इस बात पर ग़ौर करने को नहीं रुकते कि यह क्या है, और इसके द्वारा मुक्ति या निर्वाण कैसे प्राप्त किया जा सकता है?

कउनु नामु जगु जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰9, पृ॰902)

कउनु नामु गुर जा कै सिमरै भवसागर कउ तरई।।

– आदि ग्रंथ (सोरठ म॰9, पृ॰632)

दरअसल, प्रभु अनाम है, सभी नामों से परे है, परन्तु हम ने उसको अनंत नामों से पुकारा है। उस अरूप और असीम को, जो कि बुद्धि, मन, इंद्रियों की पकड़ में नहीं आ सकता, भला सही तौर पर कौन सा नाम वर्णित कर सकता है? फिर भी, युगों–युगों से, मनुष्य प्रयत्न करता रहा है कि वह उसे नाम की बेड़ियों में बाँध ले, बयान करने के लिये उसे गुणसूचक विशेषण पहना कर संबोधित करे, यद्यपि ये सभी संबोधन मिलकर भी और उसके साथ करने में निराशपूर्ण रूप से सफल नहीं होते। अंततोगत्वा, सभी

अलफ़ाज़ तो एक सीमित स्त्रोत से ही निकल कर आते हैं और इसी लिये, उस असीम को संभवतः सीमा में नहीं बंध सकते।

सब परबत स्याही करूँ, घोलूँ समुँदर जाय।
धरती का कागद करूँ, गुरु अस्तुति न समाय।।

— सहजो बाई की बानी (हरि तें गुरु की बिशेषता, दोहा 13, पृ.6)

तेरे नाम अनेका रूप अनंता कहणु न जाही तेरे गुण केते।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰358)

रिधि सिधि निधि कर तल जगजीवन स्रब नाथ अनेकै नाउ।।

— आदि ग्रंथ (देवगंधारी म॰5, पृ॰536)

हरि के नाम असंख अगम हहि अगम अगम हरि राइआ।।
गुणी गिआनी सुरति बहु कीनी इकु तिलु नही कीमति पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1319)

अनेक असंख नाम हरि तेरे न जाही जिहवा इतु गनणे।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰4, पृ॰1135)

सिक्खों के दशमगुरु, श्री गुरु गोबिंदसिंह जी महाराज फ़रमाते हैं :

त्व सरब नाम कथै कवन करम नाम बरणत सुमति।।

— दसम ग्रंथ (जापु साहिब, पृ॰1)

सभी नाम दो श्रेणियों में बाँटे जा सकते हैं :

(क) 'कर्म नाम' : अथवा वे नाम जो कि उसके गुणों तथा विशेषताओं का वर्णन करते हैं अथवा स्वभाव को दर्शाते हैं— जैसे कि राम, रहीम और करीम (अर्थात सर्वव्यापी, दयालु और कृपालु)।

(ख) 'पूरा पूरबला नाम' या व्यक्तिगत नाम : जो कि सर्वव्यापक, पुरातन, शाश्वत हैं।

किरतम नाम कथे तेरे जिहबा।। सति नामु तेरा परा पूरबला।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1083)

अब चुनाव करने का प्रश्न उठता है कि कौन सा नाम इन अनंत नामों में से सबसे अधिक प्रभावपूर्ण है और सबसे अधिक शीघ्रता से फलदायक देता है?

हिंदू प्रायः 'ॐ' की शान गाते हैं और 'राम नाम' की बड़ाई करते हैं। मुस्लिम 'अल्लाह' को तरजीह देते हैं, तो सिक्ख 'वाहेगुरु' को। प्रत्येक धर्म में इस तरह से किसी एक नाम को केन्द्रीय सिद्धांत मान कर अपनाया है और दैनिक पूजा–उपासना में उसी का प्रयोग किया है। अपने आपको इन में से किसी एक नाम तक ही सीमित रखने का अर्थ प्रभु को पक्षपाती ठहराना होगा। हमारी खोज हमें अनेक विषयों की ओर ले जाती है, जैसे कि,

(क) नाम का चुनाव : जो सबसे बढ़िया और सबसे अधिक फल–दायक हो।

(ख) नाम जपने का तरीक़ा : क्या चुने हुए नाम को मानसिक रूप से जपा जाये, या चुने हुए नाम के अर्थ पर ध्यान करते हुए?

यदि हम सिक्ख धामृक साहित्य के संदर्भ में देखें, तो हमें अनेक ऐसे संदर्भ मिलते हैं, जिनमें से कुछ तो जप या दोहराने से ता'ल्लुक रखते हैं, जबकि दूसरे सुनने या मनन, ध्यान या फिर स्वज्योतिर्मय होने से अथवा ध्वनि–सिद्धांत से भी।

नामु जपहु मेरे गुरसिख मीता।।
नामु जपहु नामे सुखु पावहु नामु रखहु गुरमति मनि चीता।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰367)

नामो नामु सुणी मनु सरसा।। नामु लाहा लै गुरमति बिगसा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰367)

जब लगु जोबनि सासु है तब लगु नामु धिआइ।।
चलदिआ नालि हरि चलसी हरि अंते लए छडाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी म॰4, वणजारा पृ॰82)

जिन हरि हिरदै नामु न बसिओ तिन मात कीजै हरि बांझा।।
तिन सुञी देह फिरहि बिनु नावै ओइ खपि खपि मुए करांझा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰697)

हरि के जन सतिगुर सत पुरखा हउ बिनउ करउ गुर पासि।।
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰4, पृ॰492)

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै।।
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै।।
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

नामु जपत कोटि सूर उजारा बिनसै भरमु अंधेरा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰ 5, पृ॰700)

'नाम' के भीतर हमारी आँखों और कानों के लिये एक संपूर्ण ख़ुराक़ मौजूद है। आगे हम ये सुनते हैं कि मन कि तख़्ती पर 'नाम' का प्रवेश और निवास हो जाता है। सिक्ख धर्मग्रंथों में यह स्पष्ट वर्णित है कि 'नाम' का संबंध इंद्रियों व ऐन्द्रियक साधनों द्वारा ग्राह्य नहीं है।

अदृसट अगोचरु नामु अपारा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1041)

इस प्रकार के संदर्भ हमें इस अतर्क्य परिणाम पर पहुँचाते हैं कि 'सच्चा नाम' कुछ ऐसा है, जो कि किसी अक्षरी शब्द से परे है। यह एक महान चुंबकीय शक्ति युक्त सत्ता है, जो कि मन को जकड़ सकती है। मीठी धुनों और सुरीले रागों से उसका चरित्र–चित्रण किया जाता है, जिन्हें सुना जा सकता है और उसकी शक्तिशाली ज्योति को देखा व साक्ष्य किया जा सकता है। वह यही 'नाम' या प्रभु की शक्ति और सत्ता है, जिसे इंद्रियों से ग्रहण नहीं किया जा सकता तथा केवलमात्र उसे इंद्रियतीत मंडलों में अनुभव किया जा सकता है। यह एक ऐसी जीवन धारा है, जो सारी सृष्टि में समाई हुई है, और इसीलिये इसे 'राम नाम' (जो कि सब जगह रमा हो) अथवा 'सबको अंगीकार करती प्रेरणा' कहा जाता है।

कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

कोटि नाम संसार में, ता ते मुक्ति न होय।
आदि नाम जो गुप्त जप, बूझै बिरला कोय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 1 (नाम का अंग 5, पृ.84)

मौखिक 'नाम' जपने और दोहराने का अपना अलग स्थान है और उपयोगिता है, और कुछ उद्देश्यों के लिये उसकी आवश्यकता भी है। परन्तु, इससे आत्म–अनुभव और परमात्म–अनुभव की प्राप्ति नहीं, जो कि दोनों ही प्रभु की क्रिया–शक्ति के साथ संबंध स्थापित करने से ही प्राप्त हो सकते

हैं— चाहे हम इसे किसी भी नाम से पुकारें— जैसे कि 'शब्द', 'कलमा', 'वर्ड', 'श्रुति', 'स्रोशा' इत्यादि; और इसका संपर्क भी किसी अनुभवी समर्थ जीवित सत्गुरु की कृपा से ही संभव हो सकता है, अन्यथा नहीं।

राम राम सभु को कहै कहिऐ रामु न होइ।।
गुर परसादी रामु मनि वसै ता फलु पावै कोइ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰3, पृ॰491)

एक प्यासे यात्री की प्यास केवल 'पानी, पानी' चिल्लाने से नहीं बुझ सकती, जब तक कि उसे वास्तव में पानी मिले न जाए। इसीलिये, यारी साहिब फ़रमाते हैं :

रसना राम कहित तैं थाको।।
पानी कहित कबहू प्यास बुझत है, प्यास बुझत जब चाखो।।

इस संदर्भ में, कबीर साहिब फ़रमाते हैं :

बिन देखे बिन अरस परस के, नाम लिए क्या होय।
धन के कहत धनी जो होय, तो निरधन रहे न कोय।।

वह प्रभु अनाम है, फिर भी, सारे नाम उसी के हैं। यदि कोई व्यक्ति उसकी सत्ता से जुड़ जाये, तो सभी नाम उसके लिये व्यर्थ रह जाते हैं, क्योंकि उसका उससे वास्तविक संबंध ही अब मायने रखता है, मात्र अक्षर नहीं। यदि किसी प्यासे को वह तत्व मिल जाये, जिसे कि 'पानी' कहा जाता है और उसे वह पीकर अपनी प्यास बुझा ले, तो चाहे वह उसे 'आब' (फ़ारसी में) 'वॉटर' (अंग्रेज़ी में) या 'हुडोर' (ग्रीक में) कहे, तो भला क्या फ़र्क़ पड़ता है, क्योंकि उसका काम तो इनमें से किसी से भी चल सकता है। इसी तरह से 'रोटी' शब्द उस पदार्थ से बिल्कुल अलग वस्तु है, जो कि वास्तविक रोटी है। जबकि एक तो केवल वर्णनात्मक है, उस वस्तु को अन्य वस्तुओं से पृथक् करके जानने-पहचानने और के लिये, तो दूसरी असल की रोटी है, जिसे खाकर भूख मिटाई जा सकती है। अतः व्यक्ति को चाहिये कि वास्तविक तत्व को पाने की कोशिश करे, न कि मायिक शब्दों के, जो कि सच्चाई को मात्र इंगित करते हैं, पीछे भागे।

'नाम' मात्र की अपेक्षा, 'नामी' को पाने की आवश्यकता है, जिससे कि वास्तविक लाभ हो सकता है— जिसे पाकर कि सदा-सदा की आत्मा

के आंतरिक ख़ालीपन को भरा जा सके। मौलाना रूम साहिब फ़रमाते हैं :

इस्म रा ख़्वानी रौ मुसम्मा रा बजो।
बे मुसम्मा इस्म कै बाशद नको।।

(हे नाम को जपने वाले! जाकर नामी को ढूंढ। बिना नामी के भला तुझे नाम मात्र से क्या चैन मिलेगा?)

श्रीरामचरितमानस, जो कि भगवान श्रीरामचन्द्र जी की जीवन गाथा है, के रचयिता संत तुलसीदास जी महाराज ने राम और ब्रह्म, दोनों से ही ज़्यादा तरजीह उन्होंने 'नाम' को दी है, क्योंकि 'नाम' एक ही समय में सृष्टा है तथा ब्रह्म, पारब्रह्म, सत्नाम, अलख और अगम की नियंत्रक–सत्ता भी।

ब्रह्म राम तें नामु बढ़ बर दायक बर दानि।
– रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 25)

अगुण सगुण दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा।।
मोरें मत बड़ नाम दुहू तें। किए जेहिं युग निज बस निज बूतें।।
– रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 23, चौपाई 1)

उभय अगम जुग सुगम नाम तें। कहेउँ नाम बड़ ब्रह्म राम तें।।
– रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 23, चौपाई 3)

कहौं कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुण गाई।।
– रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 26, चौपाई 4)

संत तुलसीदास जी महाराज की उपरोक्त आख़िरी उक्ति वास्तव में ही महत्त्वपूर्ण है। भगवान राम को ब्रह्म का अवतार माना जाता है और, समस्त अन्य उच्चतर धनियों सहित, ब्रह्म को 'नाम' की सृष्टि या उपोत्पादन माना जाता है। जपजी साहिब में गुरु नानक देव जी महाराज इसका उपयुक्त रूप से ज़िक्र करते हैं :

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु।।
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाए दीबाणु।।
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु।।
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै बहुता एहु विडाणु।।
– आदि ग्रंथ (जप जी 29, पृ॰7)

संसार में अधिकतर लोग इस शाश्वत 'नाम' रूपी सुरत की सच्चाई को भूल गए हैं और तोते की तरह से उसके अनेक नामों को रटने में लगे रहते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वे हर समय दाने की बजाये भूसे को ही इकट्ठा करने में लगे रहते हैं। इसीलिये, उनकी कड़ी मेहनत फल–दायक नहीं होती और वे भुखमरी की हालत में असंतुष्ट ही रहकर जीते हैं।

जिन्ही नामु विसारिआ किआ जपु जापहि होरि।।
बिसटा अंदरि कीट से मुठे धंधै चोरि।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1247)

होरु कूड़ु पड़णा कूड़ु बोलणा माइआ नालि पिआरु।।
नानक विणु नावै को थिरु नही पड़ि पड़ि होइ खुआरु।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग की वार म॰4, पृ॰84)

नानक पड़णा गुनणा इकु नाउ है बूझै को बीचारी।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1246)

पड़णा गुड़णा संसार की कार है अंदरि तृसना विकारु।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰4, पृ॰650)

सगल मतांत केवल हरि नाम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰296)

सभु कोइ मीठा मंगि देखै खसम भावै सो करे।।
किछु पुंन दान अनेक करणी नाम तुलि न समसरे।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस म॰1, पृ॰566)

पुंन दान जप तप जेते सभ ऊपरि नामु।।
हरि हरि रसना जो जपै तिसु पूरन कामु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰401)

बेद सासत्र जन धिआवहि तरण कउ संसारु।।
करम धरम अनेक किरिआ सभ ऊपरि नामु अचारु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰405)

प्रत्येक वस्तु के पीछे छिपी हुई एक शक्ति है और प्राण–तत्व है– 'नाम'। अतः बाहरी कार्य– जैसे कि तीर्थयात्रा, दान, व्रत, तप, यज्ञ अथवा अग्नि

को बलि, हवन और ऐसे ही अन्य कार्य सत्य के खोजी के लिये किसी काम के नहीं। 'नाम' ही मात्र वह कड़ी है, जो प्रभु और मानव को जोड़ती है। 'नाम' की मदद से ही आत्मा का ऊपरी मंडलों में सफ़र करना संभव है। यह बिजली की सवारी लिफ़्ट की तरह काम करता है, जो सुरक्षित रूप से प्रभु–प्राप्ति को तरसती सुरत को सुरक्षापूर्वक ले जाता है। 'नाम' के अलावा कोई अन्य साधन प्रभु की ओर नहीं ले जाता।

तनु बैसंतरि होमीऐ इक रती तोलि कटाइ।।
तनु मनु समधा जे करी अनदिनु अगनि जलाइ।।
हरि नामै तुलि न पुजई जे लख कोटी करम कमाइ।।
अरध सरीरु कटाईऐ सिरि करवतु धाराइ।।
तनु हैमंचलि गालीऐ भी मन ते रोगु न जाइ।।
हरि नामै तुलि न पुजई सभ डिठी ठोकि वजाइ।।
कंचन के कोट दतु करी बहु हैवर गैवर दानु।।
भूमि दानु गऊआ घणी भी अंतरि गरबु गुमानु।।
राम नामि मनु बेधिआ गुरि दीआ सचु दानु।।
मनहठ बुधी केतीआ केते बेद बीचार।।
केते बंधन जीअ के गुरमुखि मोख दुआर।।
सचहु ओरै सभु को उपरि सचु आचारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰62)

सुखमनी साहिब में हमें 'नाम' का अद्‌भुत वर्णन मिलता है :

जाप ताप गिआन सभि धिआन।। खट सासत्र सिमृति वखिआन।।
जोग अभिआस करम ध्रम किरिआ।। सगल तिआगि बन मधे फिरिआ।।
अनिक प्रकार कीए बहु जतना।। पुंन दान होमे बहु रतना।।
सरीरु कटाइ होमै करि राती।। वरत नेम करै बहु भाती।।
नही तुलि राम नाम बीचार।। नानक गुरमुखि नामु जपीऐ इक बार।।
नउ खंड पृथमी फिरै चिरु जीवै।। महा उदासु तपीसरु थीवै।।
अगनि माहि होमत परान।। कनिक अस्व हैवर भूमि दान।।
निउली करम' करै बहु आसन।। जैन मारग संजम अति साधन।।
निमख निमख करि सरीरु कटावै।। तउ भी हउमै मैलु न जावै।।

---

* हठयोग के षट्‌कर्मों में से एक, जिसमें श्वास अंदर रोककर अंतड़ियों को दायें–बायें हिलाया जाता है, जिससे उनमें से अवशेष निकाले जा सकें।

हरि के नाम समसरि कछु नाही।। नानक गुरमुखि नामु जपत गति पाहि।।
मन कामना तीरथ देह छुटै।। गरबु गुमानु न मन ते हुटै।।
सोच करै दिनसु अरु राति।। मन की मैलु न तन ते जाति।।
इसु देही कउ बहु साधना करै।। मन ते कबहु न बिखिआ टरै।।
जलि धोवै बहु देह अनीति।। सुध कहा होइ काची भीति।।
मन हरि के नाम की महिमा ऊच।। नानक नामि उधरे पतित बहु मूच।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰265)

सिमृति बेद पुराण पुकारनि पोथीआ।।
नाम बिना सभि कूडु गाल्ही होछीआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰761)

नानक कै घरि केवल नामु।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1136)

नानक नाम कबीर मता है, सो मोहिं प्रगट जनाई।।
ध्रु प्रहलाद यही रस माते, सिव रहे ताड़ी लाई।।

— दूलनदास की बानी (पृ॰9)

संसार उन्हीं का आदर करता है, जिन्होंने 'नाम' का पथ अपनाया है, क्योंकि 'नाम' पापियों को संतों में परिवर्तित कर सकता है, क्योंकि ये श्रेष्ठ और पवित्र करता है।

जान आदिकबि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू।।

— रामचरितमानस (बाल–कांड दोहा 19, चौपाई 3)

प्रभु के प्रेमी सदा ही 'नाम' के अभ्यास में लगे रहते हैं।

ऊठत बैठत सोवत नाम।।
कहु नानक जन कै सद काम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰286)

सभी धर्मों के धर्मग्रंथों में 'नाम' अथवा 'शब्द' की शक्ति के बारे में संदर्भ उपलब्ध हैं।

सरब धरम महि स्रेसट धरमु।।
हरि को नामु जपि निरमल करमु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰266)

'नाम' की भक्ति ही सच्ची भक्ति है :

'नाम' की महत्ता–प्रभु की सच्ची सेवा का बयान शब्दों में नहीं किया जा सकता।

हरि की पूजा दुलंभ है संतहु कहणा कछू न जाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰910)

केवल 'नाम' ही निष्पाप और निष्कलंक है, और बाक़ी की सभी वस्तुएँ किसी काम की नहीं। तो फिर हम किसी को दान में भला क्या दे सकते हैं?

हम सभी एक अपवित्र पदार्थ की तरह हैं और हमारी सारी धर्मपरायणताएँ गंदे और फटे पुराने कपड़ों की तरह से हैं।

— पवित्र बाइबिल (यशायाह 64:6)

जो कुछ भी हम 'नाम' की बड़ाई में कहते हैं और व्यक्त करते हैं, सभी अपर्याप्त हैं। सारी मानवता ही वास्तव में 'नाम' की बड़ाई गाने में लगी है और भक्तिभावपूर्ण अभ्यासों में लगी है; परन्तु क्योंकि ये सभी बौद्धिक स्तर पर हो रहा है तथा मन–इंद्रियों के द्वारा, इसीलिये इन सबका कोई ख़ास लाभ नहीं होता। यहाँ–वहाँ कोई बिरली आत्मा, जो कि प्रभु की शक्ति, 'नाम' के साथ जुड़ कर द्विजन्मा बनी हो, वही सच्चे मा'नो में निष्कलंक है। प्रभु की दरगाह में केवल ऐसी ही भक्ति मंजूर होती है और इस जैसी कोई अन्य उपासना नहीं हो सकती। ऐसी आत्मा सदा ही चीख–चीख कर पुकारती है :

आपका नाम मेरे लिये दीप है और मेरे रास्ते की रोशनी है।

— पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 119: 105)

बाइबिल हमें बतलाती है :

परमात्मा का 'शब्द' ('वर्ड') सजीव और शक्तिशाली है और किसी भी दो–धारी तलवार से भी ज़्यादा तेज़ है, जो कि आत्मा और सुरत, जोड़ों और मज्जा, को चीरकर, विभाजित करके अलग कर देती है, जो हृदय के विचारों तथा भावनात्मक संवेगों को पहचानने वाला है।

— पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 4:12)

क्योंकि हम ये नहीं जानते कि 'नाम' क्या है और इसका असली महत्त्व क्या है, इसलिये हमारा वर्तमान जीवन ऐसा ही है, जैसे कि किसी बहुरंगी शीशे के गुबंद के अंदर रहने वाले का हो, जो आश्चर्यचकित करने वाले रंगों के प्रभाव से प्रभावित होकर इंद्रियों और उसके विषयों की भूलभुलैया के भुलावे में ही रहते हों। हमारी सभी प्रार्थनाएँ मात्र संभ्रामिक अनाप–शनाप और हमारे कोलाहल भरे और ज़ोरदार शब्द हवा के साथ बह जाते हैं और उनका कोई परिणाम नहीं निकलता।

पूजा करै सभु लोकु संतहु मनमुखि थाइ न पाई।।
सबदि मरै मनु निरमलु संतहु एह पूजा थाइ पाई।।
पवित पावन से जन साचे एक सबदि लिव लाई।।
बिनु नावै होर पूज न होवी भरमि भुली लोकाई।।
गुरमुखि आपु पछाणै संतहु राम नामि लिव लाई।।
आपे निरमलु पूज कराए गुर सबदी थाइ पाई।।
पूजा करहि परु बिधि नही जाणहि दूजै भाइ मलु लाई।।
गुरमुखि होवै सु पूजा जाणै भाणा मनि वसाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰910)

'नाम' महान लोक नियंत्रणकर्ता–सत्ता है :

'प्रभु के शब्द' से ही स्वर्गलोक बने और कई सारे सभी लोक....उसने जैसा कहा, वैसा हो गया; उसने आज्ञा दी और वह जैसा–तैसा स्थिर रहा।

— पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 33: 6,9)

मनुष्य केवलमात्र रोटी से ही जीवित नहीं रहेगा, परन्तु प्रभु के मुख से प्रत्येक जो 'शब्द' निकलता है, उससे।

— पवित्र बाइबिल (मत्ती 4:4)

'नाम' या 'वर्ड' मुख्य नियंत्रणकारी शक्ति है। इस या अगले संसार में केवल इसी का सहारा होता है।

पिंडु पतलि मेरी केसउ किरिआ सचु नामु करतारु।।
ऐथै ओथै लागै पाछै एहु मेरा आधारु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰358)

'नाम' का न तो आदि है, और न ही अंत। ये अडोल, कभी न बदलने वाली शाश्वतता है– सनातन तथा अमर।

तिआगि सगल सिआनपा भजु पारब्रहम निरंकारु।।
एक साचे नाम बाझहु सगल दीसै छारु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰ 405)

नामु रहिओ साधू रहिओ रहिओ गुर गोबिंद।।

— आदि ग्रंथ (जैजावंती सलोक म॰9, पृ॰1429)

'नाम' की नियंत्रण–सत्ता के भीतर ही सभी कुछ मौजूद है :

जिस नो देवै तिसु मिलै गुरमती नामु बुझाई।।
नानक सभ किछु नावै कै वसि है पूरै भागि को पाई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

'नाम' महान गुरू–शक्ति है :

'वर्ड' अथवा 'नाम', नाद की ध्वनि या सिद्धांत है। वह धारा महाशून्य में विलीन थी, अतः वह अनाम थी। तब केवल गहरे मौन के अलावा कुछ नमूनेदार अकृति वाली वस्तु नहीं थी, न ही कोई रंग अथवा छाया, कुछ भी नहीं था। जीवन–तरंग [हिलोर] ने, जो उसमें छिपी थी, उस महान गहराई को झकझोरा और उसमें से 'नाम' या 'वर्ड' कहलाने वाली एक महान ध्वनि उत्पन्न हुई और समस्त सृष्टि इज़हार में आ गई, और इससे उसका सम्पोषण हो रहा है। 'नाम' या ध्वनि के सिमट जाने से सभी जीवित वस्तुओं में विघटन व बिखराव की प्रक्रिया प्रारंभ हो जाती है, जिसके फलस्वरूप वे सड़ने लगती हैं और परिणामस्वरूप प्रलय हो जाती है, जिसे आम शब्दावली में 'मृत्यु' कहते हैं। इस तरह, 'शब्द', जो कुछ इस संसार में अस्तित्व में हैं, उन सभी का आदि और अंत है।

आपीन्है आपु साजिओ आपीन्है रचिओ नाउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा वार म॰1, पृ॰463)

इसे विस्तृत रूप से पुकारा जाता है– 'नाद' (ध्वनि), 'श्रुति' (जो कि सुनी जा सके), 'शब्द' या 'आकाशवाणी' (स्वर्ग की ध्वनि), 'उद्‌गीथ' (आसमान

का संगीत), 'स्रोशा' (परलोक का संगीत), 'वर्ड' या 'हारमनी' (संगीत की ध्वनि), 'लोगॉस' या 'होली स्पिरिट' (पवित्र आत्मा), 'कलमा' या 'बांगे–इलाही' (अल्लाह की आवाज़ या पुकार) या 'निदाए–आसमानी' (स्वर्गीय ध्वनि)।

आपे साजे करे आपि जाई भी रखै आपि।।
तिसि विचि जंत उपाइ कै देखै थापि उथापि।।

— आदि ग्रंथ (आसा की वार म॰1, पृ॰475)

'नाम' से ही सम्पूर्ण पसारा है, और ऐसा कुछ भी नहीं है, जो इससे विकसित न हुआ हो।

जेता कीता तेता नाउ।।
विणु नावै नाही को थाउ।।

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 19, पृ॰4)

पुनःश्च,

नामै ही ते सभु किछु होआ बिनु सतिगुर नामु न जापै।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰753)

यहाँ पर संक्षेप में सृष्टि के चार मुख्य खंडों का वर्णन करना आवश्यक है। ये मुख्य खंड हैं :

(क) अनामी : यहाँ प्रभु अपने अव्यक्त रूप में स्थित है।

(ख) सचखंड : इसमें अगम, अलख व सतलोक अर्थात सतनाम का लोक मौजूद हैं। यह लोक केवल विशुद्ध रूप से आत्मिक है, जिसमें मन–माया की मिलावट नहीं है।

(ग) पारब्रह्म : यहाँ आत्मा और महा मन–माया कारण अवस्था में विभिन्न अनुपात में मिलते हैं, परन्तु फिर भी आत्मा ही सर्वोपरि शक्ति है।

(घ) ब्रह्मांड त्रिलोकी : जहाँ आत्मा और मन–माया अपनी स्थूल अवस्था में मिलते हैं और अपने प्राकट्य के लिये आत्मा को मन–माया पर निर्भर रहना पड़ता है। इसमें (कारण, त्रिकुटी) और सूक्ष्म (अंड, सहस्रार) व पिंड शामिल हैं। पिंड में आत्मा स्थूल प्रकृति की सबसे मोटी तह के अंदर गुप्त रहती है।

'नाम' या 'शब्द', इस सृष्टि का रचयिता और पोषणकर्त्ता– दोनों है :

हरि हरि उतमु नामु है जिनि सिरिआ सभु कोइ जीउ।।
हरि जीअ सभे प्रतिपालदा घटि घटि रमईआ सोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरीराग म॰4, वणजारा, पृ॰81)

नामै ते सभि ऊपजे भाई नाइ विसरिऐ मरि जाइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰3, पृ॰603)

अपनी शक्ति के 'शब्द' से सभी चीज़ों को संभाले हुए हैं।

— सेंट पॉल, पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 1:3)

वह 'नाम' सभी पदार्थों से पूर्व है और उसी में सभी वस्तुएँ बनी हैं।

— पवित्र बाइबिल (कुलुस्सियों 1:17)

'प्रभु के शब्द' से ही स्वर्गलोक बने और कई सारे सभी ....उसने जैसा कहा, वैसा हो गया; उसने आज्ञा दी और वह जैसा स्थिर रहा।

— पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 33:6,9)

श्रद्धा के द्वारा ही हम समझ पाते हैं कि समस्त मंडल 'प्रभु के शब्द' ('वर्ड ऑफ़ गॉड') के द्वारा बनाये गए।

— सेंट पॉल, पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 11:3)

'परमात्मा के शब्द' ('वर्ड ऑफ़ गॉड') से पुरातन आसमान व स्वर्ग बने थे और पानी से बाहर निकली हुई धरती....परन्तु धरती और आकाश व स्वर्ग, जो अब हैं, उसी 'शब्द' ('वर्ड') से उन्हें पोषित किया गया है।

— सेंट पीटर, पवित्र बाइबिल (II पतरस 3:5,7)

नाम के धारे खंड ब्रहमंड।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰ 5, पृ॰ 284)

नामु धनु नामो रूपु रंगु।।
नामो सुखु हरि नाम का संगु।।

नाम रसि जसे जन तृपताने।।
मन तन नामहि नामि समाने।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰286)

नाम के धारे आगास पाताल।।
नाम के धारे सगल आकार।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰284)

जॉन ड्राइडन ने अपने संत सिसिलिया का दिन, *(1687)* नामक गीत में इसे *'Harmony'* ('संगीत के समस्वर') के नाम से वर्णित किया है :

स्वर्गिक समस्वर से ही इस विश्व का ढाँचा बनना प्रारंभ हुआ। जब ये प्रकृति परमाणुओं के ढेर के नीचे ढकी पड़ी थी और अपना सिर भी नहीं हिला सकती थी, तो ऊँचे आसमानों से बड़ी मीठी सुरीली आवाज़ सुनाई पड़ी, जिसने कहा– 'ऐ मुर्दों से अधिक बुरी हालत में पड़ी प्रकृति, तू उठ!'

स्वर्गिक समस्वर की ध्वनि से ही ये विश्व का ढाँचा बनाना आरंभ हुआ। समस्वर से समस्वर, सभी स्वरों से गुज़रकर यह स्वरलहरी मानव में जा समाई।

'नाम' विभिन्न नीचे और ऊँचे मंडलों वाली समस्त सृष्टि का जनक अथवा मूल कारण है। इस बारे में इस संदर्भ में गुरु अर्जनदेव की साक्षी हमारे पास है :

नाम के धारे सगले जंत।। नाम के धारे खंड ब्रहमंड।।
नाम के धारे आगास पाताल।। नाम के धारे सगल आकार।।
नाम के धारे पुरीआ सभ भवन।। नाम कै संगि उधरे सुनि स्रवन।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰284)

'नाम' के कारण ही सृष्टि के विविध खंड और मंडल अस्तित्व में स्थित हैं तथा विभिन्न युगों या समय के विभागों का उद्‌गम भी 'नाम' से ही है :

खंड ब्रहमंड का एको ठाणा गुरि परदा खोलि दिखाइओ।।
नउ निधि नामु निधानु इक ठाई तउ बाहरि कैठै जाइओ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰205)

'नाम'– ये भला क्या है? :

सभी धर्मग्रंथ 'नाम' की बात करते हैं, परन्तु पूरी तरह से वे उसका बयान करने में समर्थ नहीं रहे हैं कि यह क्या है। शब्दों में इसे और चित्रित, परिभाषित करना असंभव है। इसे 'जीवन की धड़कन' या 'चैतन्य–तत्व' कह सकते हैं। जब ये हिलोर में आता है, इसमें से बड़ी मीठी सुरीली तान निकलती है, जिसे 'नाम' या 'शब्द' कहा जाता है। कूटस्थ के गहरे सन्नाटे में से ये 'शब्द धुनि' की धारा निकलकर उन सभी रूपों और रंगों के लिये, जो हमारी खुली आँख से दीखते या नहीं दीखते, ज़िम्मेदार हैं। इस संसार का तमाम जीवन इसी जीवन धारा के सहारे लटका हुआ है। 'नाम' के बग़ैर कोई जीवन अस्तित्व में नहीं रह सकता। 'शब्द' तत्व सर्वव्यापी है, चाहे इसे हम अनुभव करें, चाहे नहीं करें, फिर भी यह चोटी से लेकर एड़ी तक धुनकारें मार रहा है। यही (नारियल की) गिरी तथा सार–तत्व है और अनंत ब्रह्मांडों, जिनमें यह भौतिक धरती मात्र एक छोटा सा कण है, जो रचना का उपादान तथा दक्ष कारण– दोनों ही है।

पीपा प्रणवै परम ततु है सतिगुरू होइ लखावै।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी भगत पीपा म॰3, पृ॰695)

सभी धर्मों में परमात्मा को 'प्रकट शब्द' या 'जीवन–तत्व' कहा जाता है। ये एक धारा है, जो सजीव और चैतन्य है और इसके अंदर सृष्टि के बीज छिपे हैं। इसी सृष्टिकर्त्ता और सृष्टि को जोड़ने वाले सूत्र के द्वारा ही ये संभव है कि सुरत या आत्मा अपने स्थूल शरीर को छोड़ कर आत्मिक मंडलों में सफ़र कर अपने पिता के सच्चे घर– सचखंड में पहुँच सकती है।

धर्मग्रंथों से हमें यह ज्ञात होता है कि 'शब्द धुनि' या 'नाम' दो प्रकार की है : (1) बाहरी और (2) अंतरीय। पहली वह है, जो उन अक्षरों से बनी है, जो बोले या लिखे जा सकते हैं और दर्ज किये जा सकते हैं। इसमें सभी बुद्धि के स्तर की व शिक्षाएँ ज्ञान, जिसे 'अपरा–. विद्या' कहा जाता है अथवा सांसारिक ज्ञान व विज्ञान। सभी दुनियावी बुद्धिमानी इसमें शामिल है। इस 'वर्णात्मक' भी कहते हैं, क्योंकि इसके साथ ही आत्मा अपने आपको दुनिया में अभिव्यक्त कर सकती है और कार्य– कलाप कर सकती है। संपूर्ण किताबी ज्ञान वर्णात्मक शब्द के कारण

ही है। दुनिया और दुनियावी रिश्तों की जानकारी इस क़िस्म के शब्द पर आधारित है, जो जिस्मानी दुनिया में बाहरी तौर पर मदद करता है। इंसान–इंसान के बीच में विचारों व भावनाओं के आदान–प्रदान के लिये इसका इस्तेमाल होता है, जैसा कि अन्य जानवर भी करते हैं। बाहरी आवाज़, इस तरह से, इस रूहानी विज्ञान को जानने के लिये पहला क़दम है। अभ्यास से पहले सिद्धांत का ज्ञात होना ज़रूरी है और संत–सत्गुरु इस दुरूह विषय को समझाने के लिये इसका प्रयोग करते हैं। फिर, जप या ज़ुबानी प्रभु के नाम या मंत्र के दुहराने का काम वर्णात्मक शब्दों के द्वारा होता है। मन की प्राथमिक शिक्षा इस मार्ग पर प्राथमिक रूप से अनिवार्य है और इसी लिये बाहरी ध्वनि या शब्द की आवश्यकता है। जप भी चार क़िस्म का होता है :

(क) **वैखरी या ज़ुबानी :** जिसे कि जीभ से बोला जाता है।

(ख) **मध्यमा :** कंठ या गले के चक्र में शक्ति के निवास–स्थान पर मानसिक तौर से यह किया जाता है।

(ग) **पश्यंति :** ये जप हृदय– दिल के चक्र पर किया जाता है।

(घ) **परा :** ये भी मानसिक जप है, जो नाभि चक्र पर ध्यान को केन्द्रित करके किया जाता है।

ये विभिन्न प्रकार के जप, अलग–अलग स्तर की शांति प्रदान करते हैं, परन्तु इनसे मन को क्षणिक शांति ही मिल पाती है, क्योंकि इन कामों में लगे विभिन्न जिस्मानी चक्र वे निचले दर्जे के, 'शिव–नेत्र' या 'तीसरे नेत्र' के नीचे स्थित हैं।

इन के अलावा, एक ऐसा सुमिरन या जप उस अवर्णनीय व गुप्त शब्द–धारा का है, जो स्वयं महान निःशब्दता की गहराइयों से निकलता है। इसे तकनीकी तौर पर 'परा–विद्या' (परे का ज्ञान) या 'धुन्यात्मक शब्द' कहते हैं। इस क़िस्म के जप में सर्वव्यापी 'शब्द' या 'नाम' को सिर्फ़ सुनना होता है। चूंकि इस धुनि को किसी भी प्रकार से इंगित नहीं किया जा सकता, इसीलिये ये लाबयान है। हाँ, इससे दो भौंवों के मध्य के पीछे, इंद्रियजनित भौतिक मंडल के ऊपर ता'ल्लुक जोड़ा जा सकता है। अनंत सृष्टियों के खंड–मंडलों का निमार्ण करने वाले 'नाम' का सच्चा महत्त्व ही वही जान

सकता है, जो 'सुरत–शब्द योग' का ज्ञाता हो या जिसने अपनी रूह को शब्द–तत्व के साथ जोड़ लिया है।

बिनु जिहवा जो जपै हिआइ।।
कोई जाणै कैसा नाउ।।

– आदि ग्रंथ (मलार म॰1, पृ॰1256)

इसमें कोई शक़ नहीं कि 'धुन्यात्मक शब्द' आत्मा का सार–तत्व है, लेकिन आध्यात्मिक गुरु, संत या इस मार्ग के अनुभवी महापुरुष के मार्गदर्शन के बग़ैर और 'सुरत–शब्द योग' के नियमित अंतर्मुख होने या आत्म–निरीक्षण के तरीक़े के अभ्यास के बिना इसका बोध नहीं होता। ज़िंदगी का सबसे क़ीमती तोहफ़ा इसलिए हासिल नहीं हो पाता, क्योंकि हर वक़्त रूह बाहरी कार्यकलापों में ही लगी रहती है और लगातार मन और इंद्रियों के साथ ता'ल्लुक रखने से दुनिया और दुनियावी विषयों के आनंद में मस्त रहती है। एक बड़े अमरीकन दार्शनिक, एमरसन अंतर्मुख होने को 'अंदर को खटखटाना' कहते हैं।

ईसा मसीह अलंकारिक भाषा में उसके बारे में कहते हैं :

(दरवाज़ा) खटखटाओ, और ये तुम पर खोल दिया जायेगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 7:7)

'नाम' वर्णात्मक है, जबकि 'नामी' उन वर्णनात्मक शब्दों के पीछे छिपी महान शक्ति है, जो कि धुन्यात्मक (ध्वन्यात्मक) है। गुणसूचक शब्दों से हमें उनके द्वारा निर्दिष्ट शक्ति की ओर हटना होगा। जप या वर्णात्मक ज़ुबान से किया जाता है और आत्मिक अनुशासन के लिये प्रारंभिक क़दम है। इस संदर्भ में संत रविदास जी कहते हैं :

बिनु देखे उपजै नही आसा।। जो दीसै सो होइ बिनासा।।
बरन सहित जो जापै नामु।। सो जोगी केवल निहकामु।।

– आदि ग्रंथ (भैरउ भगत रविदास, पृ॰1167)

'वर्णात्मक' या गुणसूचक नाम अपने आप नाचती गुड़ियों की तरह प्रतीत होते हैं, परन्तु उन्हें दरअसल वे अदृश्य हाथ नचाते हैं, जो कि गुड़ियों से बंधे धागों का नियंत्रण करते हैं। ठीक इसी तरह, 'नाम' और 'नामी' या वर्णात्मक तथा धुन्यात्मक शब्दों के बीच में भी एक अचूक सूत्र हैं। वर्णात्मक

शब्द, धुन्यात्मक शब्द के लिये मार्ग प्रशस्त करते हैं और इस तरह से वे मन की वृत्तियों को साधने, उसकी तमाम अशुद्धियों को साफ़ करके अंतर में 'धुन्यात्मक शब्दधारा' को अनुभव करने लायक़ बनाने में अनिवार्यिक रूप से मददगार होते हैं। बग़ैर इस महत्त्वपूर्ण सूत्र के, रूह जिस्मानी मंडल के परे उठ नहीं सकती और उच्चतर रूहानी मंडलों में दाख़िल नहीं हो सकती, जो हमारे परमपिता परमात्मा के घर के और जाते हैं। वर्णात्मक शब्द में भाषा के फ़र्क़ के कारण अंतर हो सकता है, पर धुन्यात्मक शब्द, चूंकि यह रूह की जीवन–धारा है, सदा ही समस्वर रहता है। यह दरअसल, युगों–युगों से अनबोली बोली और अनलिखित क़ानून है और अनंतकाल तक रहेगा भी, क्योंकि सभी जीवन एक ही है और सभी सृष्टि के लिए एक ही है, यद्यपि इसके रूप अनेक हैं।

इसलिये संतों की शिक्षाएँ, जो एक–सत्य पर केन्द्रित रहती हैं, समस्त मानवता के लिये एक सांझी पैतृक संपत्ति हैं, न सिर्फ़ किसी एक या दूसरे समाज, धर्म, मत, श्रेणी, वग़ैरा के लिये। अपने नज़रिये में संत निरपेक्ष होते हैं, न कि मतांध। नूर के ज्योतिपुत्र, जात–पात का लिहाज़ किये बिना, सभी को ज्योति प्रदान करते हैं। परमात्मा ने इंसान (आत्मा देहधारी) बनाया, और इंसान ने मज़हब बनाये और अपने ही किये की जकड़ में क़ैद हो गया, जैसे कि रेशम का कीड़ा अपने ही बनाये जाल में। संत मनुष्य को इन ख़ुद की बनाई हुई जकड़नों से छुड़ाने आते हैं, ताकि उन्हें तंग ख़ाचों में से निकाला जा सके, जिनमें उसने स्वयं को सदियों से आदतन ढाला हुआ है। संत समाजों को छेड़ते नहीं, न ही कोई नया समाज बनाते हैं– वे केवल रूह को सम्बोधित करते हैं। वे एक दिव्य अधिदेश लेकर आते हैं, ताकि हम अपने आपको जान सकें। वेदों में आता है :

असतो मा सद्गमय तमसो मा ज्योतिर्गमय मृत्योर्माऽमृतं गमय।

– बृहदारन्यक् उपनिषद् (1:2:28)

(असत्य से सत्य की ओर ले चलो; अंधेरे से प्रकाश की ओर ले चलो; मृत्यु से अमरत्व की ओर ले चलो।)

उपनिषदों का वाक् है :

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया

दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति।।

– कठ उपनिषद् (3:14)

(उठो, जागो और श्रेष्ठ पुरुषों के समीप जाकर ज्ञान प्राप्त करो। जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्वज्ञानी लोग उस मार्ग को वैसा ही दुर्गम बतलाते हैं।)

आगे ईसा मसीह कहते हैं :

> ये मत समझाना कि मैं क़ानून को तोड़ने आया हूँ या पैग़म्बरों की अवमानना करने। मैं नष्ट करने नहीं आया, बल्कि सम्पूर्ण करने आया हूँ।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 5:17)

आगे फिर,

खत्री ब्राहमण सूद वैस उपदेसु चहु वरना कउ साझा।।
गुरमुखि नामु जपै उधरै सो कलि महि घटि घटि नानक माझा।।

– आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰747)

गुरु नानक की ज़िन्दगी के इतिहास में हमें (पंजाब, अब पश्चिमी पाकिस्तान के) शहर मिट्ठाकोट के फ़क़ीर मियाँ मिट्ठा का दृष्टांत मिलता है। अपनी यात्राओं के दौरान, गुरु नानक इस फ़कीर से भी मिले और उसे उन्होंने बताया कि 'नाम' या 'शब्द' के बग़ैर यहाँ इस दुनिया में और अगली दुनिया में भी जीव को चैन नहीं मिलता और वह कर्मों के बंधन से छुटकारा नहीं पा सकता। जब उनसे पूछा गया कि ये 'नाम' क्या, तो उन्होंने जवाब दिया कि यह इंद्रियों के घाट पर अनुभव करने का विषय नहीं है, मगर मन इंद्रियों से ऊपर इंद्रियातीत मंडल में इसका अनुभव किया जा सकता है। गुरु जी ने मियाँ मिट्ठा से ख़ुद अंदर के नाद को सुनने को कहा, मगर मियाँ को कुछ सुनाई नहीं पड़ा। तत्पश्चात् गुरु जी उसे एक तरफ़ ले गए और उस पर तीव्रता से अपनी दृष्टि जमाते हुए दुबारा अंतर में ग़ौर से सुनने को कहने लगे। इस पर मियाँ जी चिल्ला उठे कि अब मैं बड़ी सफ़ाई के साथ 'नाम' की धुनि तरंगों को ज़िस्म के रोम–रोम में अनुभव कर रहा हूँ। इससे पता लगता है कि 'प्रभु का शब्द' लफ़्ज़ों से नहीं, बल्कि उठती हुई आंतरिक जीवन तरंगों से चरित्र–चित्रित किया जाता है।

गुरमुखि रोमि रोमि हरि धिआवै।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰941)

इसलिये, सभी संत एकस्वर से ये कहते हैं कि परमात्मा एक है, और उसको पाने का रास्ता भी एक ही है। रूहानी अनुशासन किसी राष्ट्रीय, सामाजिक या धार्मिक पक्षों में दख़ल नहीं देता। हर एक इंसान, चाहे वह किसी भी मुल्क या धर्म से ता'ल्लुक रखता हो, इस अनुशासन का पालन करते हुए सफलतापूर्वक संत–मत का अनुसरण कर सकता है। चाहे कोई भी इंसान हो और चाहे उसका कोई भी पेशा हो, प्रत्येक के अंदर दिव्य ईश्वरीय सूत्र, पहले से ही मौजूद है। यह आत्म–विश्लेषण और अंतर्मुख होने की पद्धति से प्राप्त किया जाता है और जो कोई इंसान इस प्रणाली को सीख कर इसका क्रियात्मक रूप से अनुभव करता है, उसे इसका संपर्क मिल जाता है। लेकिन परेशानी यह है कि सभी पुराने रीति–रिवाज़ों, कर्म–कांडों और विश्वासों से जुड़े रहते हैं और उनसे नाता तोड़कर ऐसे विचारों को, जो कि नये और अनूठे लगते हैं, ग्रहण करने को राज़ी ही नहीं होते। लेकिन किसी प्रभु–प्राप्त पुरुष अनुभवी पुरुष के सतत् सहचर्य हो जाने से, सत् की ज्योति धीरे–धीरे उसके अंदर प्रकट हो जाती है और समय गुज़रने के साथ–साथ, वह भी उनसे नाता तोड़कर, सत्य का अनुभव करने लगता है।

'नाम' शब्द–तत्व है :

'नाम' का चरित्र–चित्रण एक सुरम्य व शांत ध्वनि–धारा से किया जाता है। यह आकाशीय संगीत प्रत्येक व्यक्ति के अंदर बज रहा है। दरअसल, ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ वह मौजूद न हो। किसी संत–सत्गुरु या दिव्य–संगीत के अनुभवी महापुरुष की कृपा से ही इस की स्वरलहरियों को सुना जा सकता है। इस स्वर्गिक संगीत का, दुनिया के सभी धर्म–ग्रंथों में उपयुक्त प्रमाण मिलता है।

गुण गोबिंद नाम धुनि बाणी।।
सिमृति सासत्र बेद बखाणी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰296)

हिरदै नामु सदा धुनि निहचल घटै न कीमति पाई।।
बिनु नावै सभु कोई निरधनु सतिगुरि बूझ बुझाई।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰1, पृ॰1232)

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै।।
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै।।
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

तब अंधों की आँखें खोल दी जायेंगी और बहरों के कान सुनने लगेंगे। तब लंगड़े, हिरनों की तरह से छलांग भरने लगेंगे और गूंगों की ज़ुबान गाने लगेंगी और बीयाबान जंगल में जल की धारा फूट उठेगी और रेगिस्तान में नदियाँ बह चलेंगी।

— पवित्र बाइबिल (यशायाह 35:5-6)

अब तो हम शीशे से अस्पष्ट रूप से देखते हैं; लेकिन तब आमने-सामने अभी तो मैं अपूर्ण रूप से देखता हूँ; लेकिन तब मैं भी जान लूंगा, जैसा कि मैं भी जाना जाता हूँ।

— सेंट पॉल, पवित्र बाइबिल (कुरिन्थियों 13:12)

'नाम' या 'शब्द' का निवास स्थल :

यह जिस्म प्रभु का हरि-मंदिर है, क्योंकि परमात्मा ने इंसान को अपना ही हमशक्ल बनाया है। लेकिन, जब सुरत अंतर्मुख होने पर, संकेंद्रित होकर भूमध्य के पीछे जमा हो जाती है, तभी इंसान दिव्य-संगीत को सुन सकता है। गुरु नानक से जब हठ योगियों ने (जो प्राणायाम आदि में लगे हुए थे), इस संगीत के विषय में सवाल किया, तो उन्होंने उन्हें बतलाया :

काइआ नगरी महि मंगणि चड़हि जोगी ता नामु पलै पाई।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰908)

इस दिव्य-सूत्र में, जो मूलभूत रूप से संगीतमय चरित्र का है और जिसमें बड़ी भारी चुंबकीय शक्ति है जो रूह को ऊपर की ओर रूहानी मंडलों में खींचती है, क्योंकि आत्मा, 'शब्द' और प्रभु, एक ही तत्व के बने

हैं। जब एक, अपने जैसे को आकर्षित करता है, तो आत्मा सम्मोहित होकर जिस्मानी बंधनों से खिंच जाती है। इसीलिये मौलाना रूमी फ़रमाते हैं :

गर बिगोयम शम्मा–ए–जाँ नग़महा,
जानहा सर बर ज़नन्द अज़ दख़्महा।

– मसनवी (दफ़्तर 1, पृ.212)

(यदि इन मधुर संगीत की तानों का हाल मैं तुझे बतलाऊँ, तो उसे सुन कर मुर्दे भी अपनी क़ब्रों से उठ खड़े हों।)

ईसा मसीह भी इस बारे में कहते हैं :

जब प्रभु के पुत्र की आवाज़ को मुर्दे भी सुनेंगे, तो जो उसे सुनेंगे, वे सभी जीवित हो उठेंगे।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:25)

यह बहिश्त की आवाज़, स्वर्गिक संगीत, हम में से हर एक के अंदर पहले से मौजूद है और बाहर जाने वाली वृत्तियों को रोक कर, किसी नाम या नामों के जप से, हम अपनी सुरत को इंद्रियों के घेरे में से निकाल सकते हैं। इस संगीत की प्रतिध्वनियाँ हमारी आत्मा को अंतर्मुख नशे में मदमस्त कर देती हैं।

नामे राते अनदिनु माते नामै ते सुखु होई।।

– आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰946)

संसार के सभी मादक पदार्थ, शीघ्र गुज़र जाने वाला नशा और क्षणिक विस्मृति ही दे सकते हैं, लेकिन 'नाम' या 'शब्द' में रंगी सुरत हमेशा आत्मा की गहन शांति में से उत्पन्न होने वाली ध्वनि में तल्लीन रहने से चिरस्थायी आनंद की अनुभूति करती है, जो असमाप्य है।

नाम खुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।

– जनम साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

'नाम' जीवन सत्ता है, जो सभी प्राणियों के माध्यम से कार्यरत है और इसके निकास का अर्थ है– विघटन, प्रलय तथा मृत्यु :

आखा जीवा विसरै मरि जाउ।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰349)

और आगे,

मेरे प्रीतमा हउ जीवा नामु धिआइ।।
बिनु नावै जीवणु ना थीऐ मेरे सतिगुर नामु दृड़ाइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰40)

जब तक जीवात्मा को 'नाम'– जो कि अब हम में से प्रत्येक में अंतनिर्हित है– का आंतरिक संपर्क नहीं मिलता, तब तक उसके लिये कोई अन्य विकल्प नहीं बचता और उसे सुख–शांति नहीं मिल पाती।

आत्मिक अनुशासन– अभ्यास करने का समय :

'नाम' की उपासना किसी भी समय या स्थान में की जा सकती है और इसके लिये कोई भी बंदिश नहीं है। परन्तु, इसके लिये ब्रह्ममुहूर्त या अमृत–वेला (प्रातःकाल के प्रारंभ का समय) सबसे ज़्यादा उपयुक्त और फलदायी है।

अंमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 4, पृ॰2)

और फिर,

झालाघे उठि नामु जपि निसि बासुर आराधि।।
कार्हा तुझै न बिआपई नानक मिटै उपाधि।।

– आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰255)

'नाम' सुनाई क्यों नहीं देता?

हमारा मन सदा ही डोलता रहता है। इस पर युगों–युगों से जमा हुए संस्कारों की मैल भरी हुई है। हर समय ही हमारी मानसिक कार्य–प्रणालियाँ संसार की ओर प्रवाहित होती रहती हैं और क्षण भर के लिये भी उन्हें विश्राम नहीं मिला है। जब तक कि मन पवित्र और स्थिर न हो सके, उस 'ध्वनि–धारा' की गुंजार को सुना नहीं सकता।

मनि मैलै भगति न होवई नामु न पाइआ जाइ।।
मनमुखु मैले मैले मुए जासनि पति गवाइ।।

– आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰39)

और फिर,

जिचरु इहु मनु लहरी विचि है हउमै बहुतु अहंकारु।।
सबदै सादु न आवई नामि न लगै पिआरु।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1247)

'नाम' एक निजी अनुभव है :

असली मा'नों में 'नाम' जानने–समझने तथा अंदाज़ करने का विषय नहीं है। यह एक अनबोली भाषा है, जो मूक रूप से बोलती है। मैडम ब्लावात्स्की इसे 'ख़ामोशी की आवाज़' ('Voice of the Silence') बुलाती हैं। 'शब्द' के साथ निरंतर जुड़े रहने से मन की तरंगें शांत हो जाती हैं और मन पूरी तरह से शांत हो जाता है। गुरु नानक इसके बारे में कहते हैं :

अदृसट अगोचरु नामु अपारा।। अति रसु मीठा नामु पिआरा।।
नानक कउ जुगि जुगि हरि जसु दीजै हरि जपीऐ अंतु न पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1041)

वास्तविक 'नाम'– अबोद्धय और गुप्त :

प्रत्येक जीव के भीतर 'नाम' का सार सर्वव्यापी है, और फिर भी यह गुप्त और अनुभवातीत है। किसी संत–सत्गुरु की कृपा से, जो कि 'नाम' में स्थिर हैं– दूसरे शब्दों में 'नाम–सदेह' हैं– और दूसरों को भी अपनी आत्म–शक्ति का अनुभव दे सकता है, इसको व्यक्त किया जा सकता है।

गुपता नामु वरतै विचि कलजुगि घटि घटि हरि भरपूरि रहिआ।।
नामु रतनु तिना हिरदै प्रगटिआ जो गुर सरणाई भजि पइआ।।

— आदि ग्रंथ (प्रभाती म॰3, पृ॰1334)

इस संसार में व्यक्ति को, जो चाहे, सभी कुछ मिल सकता है, परन्तु अप्रकट 'शब्द' का मिल पाना बहुत मुश्किल है। जो कोई सत्गुरु से जुड़ा गुरुमुख होता है, यह उसी की पैतृक संपत्ति है।

इसु जग महि नामु अलभु है गुरमुखि वसै मनि आइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

जुग माहि नामु दुलंभु है गुरमुखि पाइआ जाइ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰3, पृ॰490)

'नाम'- इंसान और उसके रचयिता के बीच दिव्य-सूत्र :

'नाम' की नियंत्रण शक्ति की जकड़ में, अनंत व अनगिनत ब्रह्मांडों की श्रृंखलाएँ हैं। इंसान का जिस्म भी ब्रह्मांड के नमूने पर ही बनाया गया है। नाना प्रकार के तत्वों से मिलकर बना यह पिंड (microcosm) भी अपनी सम्पूर्णता तथा मूलभूत एकता के लिये 'नाम' पर निर्भर है। ये प्रभु तथा मानव के बीच का अटूट जोड़ है। जैसे मछली एक बड़ी पानी की भारी लहर तैर सकती है, वैसे ही एक रूह भी 'शब्द ध्वनि' की धारा पर सवार होकर 'नाम' के समुद्र तक पहुँच सकती है। 'शब्द धुनि' के मार्ग को अंतर्मुख होने की प्रक्रिया कहा जाता है। बाक़ी के सभी रास्ते फैलाव की ओर जाते हैं, जिनमें जीवन की गहमा–गहमी से बचने की कोई संभावना नहीं है।

नाम संगि जिस का मनु मानिआ।।
नानक तिनहि निरंजनु जानिआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰281)

'नाम' का मार्ग सहजावस्था प्राप्त कराता है :

'नाम' सहज अवस्था प्राप्त कराने में मददगार साबित होता है, जो तीनों गुणों— सात्विक, राजसिक व तामसिक— के क्षेत्र को पार करके प्राप्त होती है। वह अवस्था क्षय और प्रलय के प्रभाव से परे है।

नानकु पइअंपै दइआ धारहु मै नामु अंधुले टोहनी।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰847)

मै अंधुले की टेक तेरा नामु खुंदकारा।।
मै गरीब मै मसकीन तेरा नामु है अधारा।।

— आदि ग्रंथ (तिलंग भगत नामदेव, पृ॰727)

'नाम'– वर्तमान युग में सर्वाधिक प्रभावपूर्ण साधना :

जब–जब पाप बढ़ कर दुनिया पर छा जाते हैं और सद्गुण लुप्त हो जाते हैं, ऐसे हालात में संतजन आकर 'नाम' की आध्यात्मिक साधना का प्रचार करते हैं, क्योंकि यही सबसे सहज और शीघ्रतम इलाज है। इस युग में सभी व्यक्तिगत और सामाजिक कृत्य और धर्मग्रंथों में बतलाये गए रीति–रिवाज़ किसी ख़ास कारगर नहीं हैं, क्योंकि वे पुराने पड़ गए हैं और समय के उपयुक्त नहीं रहे हैं।

कलजुग महि कीरतनु परधाना।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1075)

संत रविदास जी आगे इस बारे में और प्रमाण देते हैं :

सतजुगि सतु तेता जगी दुआपरि पूजाचार।।
तीनौ जुग तीनौ दि़डे कलि केवल नाम अधार।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बैरागनि रविदास, पृ॰346)

स्वामी तुलसीदास जी इससे सहमति जतलाते हैं :

ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे।। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे।।
कलि केवल मल मूल मलीना।। पाप पयोनिधि जन मन मीना।।
नाम कामतरु काल कराला।। सुमिरत समन सकल जग जाला।।

गुरु रामदास जी फ़र्माते हैं :

कलजुगि नामु प्रधानु पदारथु भगत जना उधरे।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰4, पृ॰995)

कलजुग कर्म धर्म नहिं कोई। नाम बिना उद्धार न होई।।

— स्वामी शिवदयालसिंह जी, सार–बचन, पद्य (बचन 38, पृ॰337)

कलिजुग महि इक नामि उधारु।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰5, पृ॰1138)

अब कलू आइओ रे।। इकु नामु बोवहु बोवहु।।
अन रूति नाही नाही।। मतु भरमि भूलहु भूलहु।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰5, पृ॰1185)

कहु नानक ता कै बलि जाउ।।
कलिजुग महि पाइआ जिनि नाउ।।
— आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1298)

'नाम'– चारों युगों में उद्धार करने वाला :

'नाम' का मार्ग सब से पुरातन और सबसे अधिक कुदरती है। यह प्रभु के क़ानून के अनुरूप ही है। चारों ही युगों में लोगों का उद्धार करने के लिये ये रक्षक डोर के समान ही बना रहा है। पिछले पाँच सौ सालों में कबीर साहिब, गुरु नानक और अन्य नौ सिक्ख गुरु, दादू साहिब, पलटू साहिब, तुलसी साहिब, स्वामी शिवदयाल सिंह जी, बाबा जयमल सिंह जी और हुजूर बाबा सावन सिंह जी इस पथ के महान प्रतिपादक हुए हैं। मुस्लिम पीर, फ़कीर, दरवेश इसी 'कलमा' का अभ्यास पिछले चौदह सौ या उससे अधिक वर्षों से करते रहे हैं। हज़रत मुहम्मद, शम्स तबरेज़, मौलाना रूमी, हाफ़िज़ साहिब, मोइनुद्दीन चिश्ती और अन्य सूफ़ियों ने इसी रूहानित की तालीम दी। फिर, दो हज़ार साल पहले, जॉन दि बॅप्टिस्ट और क्राइस्ट ने 'वर्ड' या 'लोगॉस' का पथ प्रदर्शित किया। बहुत पहले ज़रतुश्तु ने फ़ारस में धुन या 'स्त्रोशा' 'शब्द' का प्रचार किया। पच्चीस सौ वर्ष पहले, भगवान बुद्ध ने इसी साधना के अभ्यास का प्रचार किया। उससे भी पहले, गोरखनाथ की शिक्षाएँ भी इसी मुख्य सिद्धांत के इर्द–गिर्द रहीं। चार हज़ार साल पहले, हम देखते हैं कि मिश्र में इस 'ऐटन का पथ' कहते थे, जिसका अभ्यास फ़िराउन राजा इखनेतान ने किया। उपनिषदों में हमें 'उद्गीथ' या परलौकिक संगीत स्वरलहरी के हवाल मिलते हैं, जिसे 'स्वर्ग का संगीत' या 'परलोक की आवाज़' कहा जाता है। उससे भी काफ़ी पहले, भगवान कृष्ण भी इस परा–विद्या से भली भांति परिचित थे। संसार के सबसे प्राचीन वेदों के वाग्देवी सूक्त में, हम 'नाद' या संगीत तथा 'श्रुति' या जो सुनी जाये, के बारे में पढ़ते हैं।

कबीर साहिब हमें बतलाते हैं कि वे चारों युगों में प्रकट हुए, और प्रत्येक में उन्होंने 'नाम' या 'शब्द' का ही प्रचार किया। प्रत्येक युग में उनका अलग ही नाम था यथा सत्–सुकृत, मुनीन्द्र, करुणामय और अंत में, कबीर। सिक्ख धर्मग्रंथों में बड़े साफ़ लफ़्ज़ों में इस बात की गवाही है

कि समय के चारों युगों में, लोगों ने संतों के चरण कमलों में बैठकर 'नाम' के अभ्यास से लाभ उठाया।

जुग चारे नामु उतमु सबदु बीचारि।।
कलि महि गुरमुखि उतरसि पारि।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰229)

नामे उधरे सभि जितने लोअ।।
गुरमुखि जिना परापति होइ।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ म॰3, पृ॰1129)

एक नामि जुग चारि उधारे सबदे नाम विसाहा हे।।

— आदि ग्रंथ (मारू सोलहे म॰3, पृ॰1055)

❀❀❀

अध्याय

: **2** :

विभिन्न धर्मों के प्रमाण

यदि हम विभिन्न धर्मों के धर्मग्रंथों का अध्ययन करें, तो सर्वनिष्ठ रूप से सभी में प्रभु की 'ज्योति और ध्वनि', जो कि सृष्टि के सृजन तथा पालन का तथा मानवता के पुनर्जागरण का एकमात्र साधन है, के बड़े साफ़ हवाले मिलते हैं।

हिंदू धर्म :

हिन्दू धर्म–विद्या के ग्रंथों के अनुसार संपूर्ण उत्पत्ति 'नाद' से हुई है। उन्होंने इसे 'आकाशवाणी' भी कहा है, इसके संदर्भ वेदों में, जो कि संसार के प्राचीनतम धर्मग्रंथ हैं, मिलते हैं। नादबिंदु उपनिषद् में, जैसे कि, इस विषय का सरस वर्णन है। हठयोग प्रदीपिका भी इस 'ध्वनि' सिद्धांत का समर्थन करती है।

स एष परवरीयानुद्गीथः स एषोऽनन्तः
परोवरीयो हास्य भवति परोवरीयसो ह लोकोञजयति य
एतदेवंविद्वान्परोवरीया ँसमुद्गीथमुपास्ते।

– छांदोग्य उपनिषद् (1.9.2)

(वह, परमात्मा, ही श्रेष्ठ से अति श्रेष्ठ उत्गीथ है, वह अंतरहित है। जो इसे इस रूप में समझता है, वही अतिश्रेष्ठ उत्गीथ की उपासना करता है और उसी का जीवन निरंतर अधिक से अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है और वही उत्तरोत्तर श्रेष्ठ लोकों को प्राप्त कर लेता है।)

सिद्धासने स्थितो योगी मुद्रां संधाय वैष्णवीम्।
श्रणुयाद्दक्षिणे कर्णे नादमन्तर्गतं सदा।
इभ्यस्यमानो नादोऽयं वाह्यामाबृणुते ध्वनिम्।

पक्षाद्विपक्षमखिलं जित्वा तुर्यपदं व्रजेत्।

— नादबिंदु उपनिषद् (31,32)

(योगी को सिद्ध आसन से बैठकर, वैष्णवी मुद्रा [दोनों हाथों से दोनों कान, आँख बंद करके बैठना] धारण करके दहिने कान में अंदर से उठने वाली ध्वनि को सुनना चाहिये। इस तरह का नाद किया गया अभ्यास बाहर की ध्वनियों को ढक लेता है। इस तरह से 'अकार' तथा 'मकार' के दोनों पक्षों पर विजय प्राप्त करके धीरे धीरे सारे प्रणव को जीते। इस प्रकार करने पर साधक तुरीय पद को दो सप्ताह के लगातार अभ्यास से पा जाता है।)

आदौ जलधिजीवीमूतभेरीनिर्झर सम्भवः।
मध्ये मर्दलशव्दाभो घण्टाकाहलजस्तथा।
अन्ते तु किंकणीवंशवीणाभ्रमरनिस्वनः।
इति नानाविधा नादाः श्रूयन्ते सूक्ष्मसूक्ष्मतः।

— नादबिंदु उपनिषद् (34,35)

(पहले पहल समुद्र, मेघ, झरने की जैसी फुसफुसाती आवाज़ें सुनाई पड़ती हैं। फिर स्पष्ट होने पर भ्रमर, वीणा, वंशी तथा किंङ्किणों की तरह मधुर होती है। इस तरह से ध्वनि धीमी से धीमी होती हुई कई–कई तरह से सुनाई देती हैं। फिर धीमे से धीमे नाद का विचार करना चाहिये।)

नेत्रस्थ जागरितं विद्यात्कण्ठे स्वप्नंसमाविशेत।
सुषुप्तं हृदयस्थं तु तुरीयं मूर्ध्नि सस्थितम्।।

— ब्रह्म उपनिषद् (21)

(जहाँ मन तथा वाणी पहुँच नहीं सकते, उस आत्मा के आनन्द को जानकर ज्ञानी पुरुष मुक्त हो जाते हैं।)

स एव सर्वं यद्भूतं यच्च भव्यं सनातनम्।
ज्ञात्वा तं मृत्युमत्येति वान्यः पन्था विमुक्तये।।
सर्वभूतस्थमात्मानं सर्वभूतानि चात्मनि।
सपश्यन् ब्रह्म परमं याति नान्येन हेतुना।।

— कैवल्य उपनिषद् (9,10)

(जो कुछ पहले हो चुका है अथवा आगे होगा, वही सब वही एक नित्य, अनादि सत्ता है, जिसे अनेक नामों से पुकारा जाता है। जो इस तत्व को समझ लेता है, वह व्याधि और जन्म–मरण के चक्कर से छुट जाता है। इसको छोड़ कर मोक्ष

का अन्य कोई रास्ता नहीं है। वह मनुष्य परम् ब्रह्म को प्राप्त कर लेता है, जो आत्मा को समस्त भूतों में और समस्त भूतों को आत्मा में व्याप्त देखता है। इस के अतिरिक्त किसी दूसरे उपाय से यह संभव नहीं।)

स एव जपकोट्या नादमनुभवति

— हंस उपनिषद् (2)

('नाद' या 'शब्द' ध्वनि पर ध्यान करना ही मुक्ति का महामार्ग है।)

तेजोबिंदु उपनिषद में परम आत्मा का निवास मानव के हृदय के सबसे सूक्ष्म ज्योति केन्द्र में बतलाया गया है, जिसका योगियों को अनुभव इंद्रियों के परे ध्यान द्वारा होता है।

'ज्योति के बिंदु' के बारे में आगे कहा गया है कि इसका ध्यानाभ्यास सर्वोत्तम है, जो जगत से परे 'अण्व', 'शाक्त' और 'शांभवी' तरीक़ों से आंतरिक हृदयाकाश में होता है। यह ध्यान 'स्थूल', 'सूक्ष्म' तथा 'कारण' रूप से भी होता है।

परमात्मा का अनुभव करने की यह सबसे कठिन, परन्तु एकमात्र विधि है। विवेकी और विचारवानों के लिये भी यह करने में कठिन, प्राप्त करने में कठिन, बोध पाने में कठिन, निष्ठा रखने में कठिन और पार करने में भी कठिन है।

भावितं तीव्रवेगेन यद्वस्तु निश्चयात्मकम्।
दृश्यं ह्यदृश्यतां नीत्वा ब्रह्माकारेण चिन्तयेत्।।

— तेजोबिंदु उपनिषद् (1:50)

(दृष्यमान को अदृष्यमान गतियों में परिणत करने पर साधक को सभी कुछ ब्रह्म दिखना चाहिये। विवेकवान व्यक्तियों को, अपने बोध को चित् के सार से भरपूर कर, सदैव परमानंद की अवस्था में रहना चाहिये।)

मेधावी व्यक्ति, जो कि ज्ञान तथा अनुभूति प्राप्त करने को आतुर है, को चाहिए कि वेदों का अध्ययन करके उनको त्याग दे, जैसे कि चावल के लिये उसके छिलकों को।

घृतमिव पयसि निगूढं भूते भूते वसति विज्ञानम्।
सततं मन्थयितव्यं मनसा मन्थानभूतेन।।

— अमृतबिंदु उपनिषद् (20)

(जिस प्रकार दूध में मक्खन छिपा होता है, ऐसे ही विशुद्ध चैतन्य आत्मा भी प्रत्येक प्राणी में अव्यक्त रूप से निवास करती है। मन की मथनी द्वारा ही, उसके व्यक्त होने के लिये, इसका मंथन संभव हो सकता है।)

उपनिषदों में 'त्रिलोचन', 'त्रियंबक' आदि शब्दों का प्रयोग आता है, जो कि तीन आँखों वाला हो। 'तीसरी आँख' को क्राइस्ट ने 'केवलमात्र आँख' कहा है और उसे ही 'दिव्य चक्षु' भी कहा जाता है, जोकि स्वयं ज्योतिर्मय चक्षु हो।

श्रीरामचरितमानस के रचयिता गोस्वामी तुलसीदास ने इसके बारे में कहा है :

बंदहुँ गुरुपदनख मनि गन जोती।
सुमिरत दिब्यदृष्टि हियँ होती।।

– श्रीरामचरितमानस (बाल–कांड)

बौद्ध मत :

बौद्ध मत महायान मार्ग के ग्रंथ, तत्काल निर्वाणप्राप्ति का मार्ग के, जिसके लेखक हुई हाय हैं (अनुवादक : जॉन ब्लोफ़ैल्ड), कुछ उद्धरण यहाँ प्रस्तुत किये जाते हैं :

बोध की प्रकृति :

बोध प्राप्त करने की शक्ति निरंतर है, अतः चाहे पदार्थ प्रस्तुत हों या नहीं, यह बोध होता रहता है। इसलिये हम देखते हैं कि यह पदार्थ है, जो कि आते और जाते रहते हैं, न कि बोध की इंद्री। बाक़ी इंद्रियों की भी यही हालत है।

श्रवण की प्रकृति :

प्रश्न यह नहीं है कि ध्वनि है या नहीं। क्योंकि श्रवणशक्ति इसलिये चाहे ध्वनि हो या न हो, सुनना ज़ारी रहता है। ज्ञाता 'आत्म' की ये वास्तविक प्रकृति है, जो पदार्थों और ध्वनियों को स्वतंत्र होकर देखता और सुनता है, और इंद्रियों की मदद के बग़ैर ही।

तत्काल बोध द्वारा ज्योतिर्मय होने की विधि :

इसका उद्देश्य यह है कि ऐसी अवस्था में पहुँचा जाए, जहाँ पर विचार अनुपस्थित हो। इसका विस्तार अपने आपको किसी भी प्रलोभन में न आने देने में है। इसका स्वभाव शांत अवस्था और विवेक इसे कार्यरत करने वाला कर्मक है।

विवेक के चार प्रकार :

(क) 'स्वबोधन या स्वयं-परिपूर्णता का विवेक' : पाँच प्रकार के इंद्रियजनित बोध से उपजे, जो बिना उसकी वजह से आकार की विविधता में विश्वास कराये जाने के, सभी बोध–शक्तियों का उपयोग कर पाना है।

(ख) 'गहन पहचान या अवलोकन का विवेक' : जो समझ से पैदा होता है। भ्रांति निवारण के लिये इसमें बिना अनियमित विचारों को आने देकर सभी प्रकार के बोध के क्षेत्र में प्रवेश करना तथा उनके बीच भेद करने में पारंगत होना होता है।

(ग) 'सर्वेसार्विक प्रज्ञा' : जिसका उदय विवेक से होता है, जिससे अणु–अणु का लगाव या घृणा के भाव की भावना के बिना देखना संभव होता है, जिसका तात्पर्य है, भेददृष्टि का अभाव।

(घ) 'स्व:संपूर्ण सर्व-प्रातिभ बुद्ध-ज्ञान' : जिसकी प्राप्ति, सभी मन–बुद्धि इंद्रियजन्य प्रत्यक्ष ज्ञान के आधार पर होती है। यह परम शून्यता तथा निश्चलता है, परिपूर्ण और स्थिर दीप्ति।

'सुरंगम सूत्र' के बारे में :

(जिसे श्री ड्वाइट गोड्डार्ड ने 'ए बुद्धिस्ट बाइबिल' नामक पुस्तक में संकलित किया)

इस सूत्र का विषय–वस्तु महानतम ज्योतिर्मयता तथा सर्वोच्च समाधि (सहस्त्रार पर 'सविकल्प समाधि') को प्राप्त करने हेतु आवश्यक क़दमों को प्रकट करता है। इसको वरप्राप्त बुद्ध के द्वारा भिक्षुओं तथा सर्वोच्च बोधिसत्त्व–महासत्त्वों की एक महान सभा को, विशषकर उनके अपने प्रिय भिक्षु, आनन्द को, जो कि हाल ही में एक गणिका, चिति के प्रलोभिनों का सामना नहीं कर पाया था, दिये गए निर्देशों के रूप में प्रस्तुत किया गया

है। आनन्द से प्रश्न पूछने से लेकर, वे अपनी सर्वोच्च समाधि कर शीर्ष अवस्था की प्राप्ति को विस्तारपूर्वक समझाते हैं। निर्देशों के दौरान बुद्ध के व्यक्तित्व से चारों ओर प्रकाशमय होती हुई किरणों के अनेक चमत्कारी दृष्य देखे जाते हैं, जो उसी प्रकार चमत्कारिक रूप से लौटकर उनके ललाट पर उनके प्रताप के शीर्ष में समा जाती हैं।

इस सूत्र में मानसिक तैयारियों तथा क़दमों की, जिनका अनुसरण महानतम ज्योतिर्मयता की प्राप्ति हेतु ध्यान की साधना में किया जाना आवश्यक है, विस्तारपूर्वक तथा सुस्पष्ट रूप से प्रस्तुति की गई है। इन क्रमबद्ध क़दमों को इतने विस्तृत रूप से तथा इतनी प्रबुद्धता से प्रतिपादित प्रस्तुत किया गया है कि यदि इनका, इनके लक्ष्य के लिये श्वासों की गिनती द्वारा प्रारम्भ से लेकर, अनुसरण किया जाये, तो व्यक्ति अवश्यमेव ज्योतिर्मयता तथा समाधि को प्राप्त करेगा।

यह सूत्र तीन मुख्य भागों में प्रस्तुत है, जो ध्यान–अभ्यास के तीन पक्षों को उजागर करता है : 1. क़दम, जो सभी इन्द्रियजनित धारणाओं तथा उनपर आधारित सभी भेदमूलक विचारों को वर्जित करके मन 'ध्यान' द्वारा प्रशांत करने संबंधी हैं, 2. सत्य के अंतर्बोध का व्यक्तिपरक पक्ष, जिसे 'समाधि' कहा जाता है तथा 3. वह पक्ष, जिसे 'समापत्ति' कहा जाता है, जिनका संबंध उन लोकातीत कृपाओं तथा शक्तियों से है, जो महानतम ज्योतिर्मयता के द्वारा प्रकट तथा समाधि के द्वारा प्राप्त होती हैं।

प्रथम खंड में लेखक ने मन की विभिन्न गतिविधियों के तथा इसकी अभिव्यक्ति को प्रतिबंधित करने वाले अलग अलग घटकों– यथा इन्द्रियाँ, विवेकशील मन, बौद्धिक मन, उनकी अनुभूतियों, अन्योन्यक्रियाओं तथा प्रतिक्रियाओं, छः प्रकार के बोध तथा धारणाओं, चेतनता तथा इसके विषयों के बारह केन्द्रों, मानसिकता के अठारह क्षेत्रों से लेकर विभिन्न इन्द्रिय–मनों, इन्द्री–विषयों, विषय स्वमेव तथा अंततः, विषयों का चार महाभूतों से संबंधों का सुस्पष्ट वर्णन किया है। वे विवेकशील मन की भ्रमपूर्ण कल्पनाओं तथा सारभूत मन के सच्चे ज्ञान के बीच के अंतर को उजागर करते हैं। इस प्रकार, वे सभी इन्द्रियजनित धारणाओं और उनके सभी संयुक्तिकरणों तथा प्रस्तारों की रिक्तता, अनित्यता तथा असत्यता को इंगित तथा अखंडनीय रूप से प्रमाणित करते हैं।

तत्पश्चात्, वे ये दिखलाते हैं कि इन अभिव्यक्तियों के अनेक अंगों के कारण और उनके ही द्वारा तथा उनके द्विविध विचारों के कारण, प्राकृतिक मन एक भ्रमपूर्ण भूल–भुलैया में पड़ जाता है, जो चेतनता की सततता तथा उसकी इन्द्रियग्राह्य जीवों की दुनिया और उनके अनुबंधित कर्मों के संचय का निर्माण करता है। परन्तु, क्योंकि ये सभी कारण तथा प्रतिबंध मात्र हवाई झाँकियाँ है, एक सही अंतर्बोधिक अनुभूति के द्वारा मन माया के भ्रमों को उखाड़ ज्योतिर्मयता का वास्तविक स्वरूप अनावृत्त कर लेता है। यही अंतर्बोधिक साधना की, जिसे 'ध्यान' कहा जाता है, प्रथम महान शिक्षा है।

जब मन ने इन सभी उलझाने वाले भ्रमों की निर्भरताओं को त्याग दिया है और अपने सच्चे तथा सार मन में विश्वास हासिल कर लिया है, यह सूत्र दूसरी महान शिक्षा देता है : समाधि की प्राप्ति, जो सच्चे तथा सार मन का व्यक्तिपरक पक्ष या अंतनिहित, शाश्वत तथा पूर्णतया एकीकृत प्रकृति की अंतर्बोधिक अनुभूति है। यह सूत्र परेशनियों के स्रोत को तथा किस प्रकार छः तरह की धारणाओं से बनी ग्रंथियों को खोला जा सकता है दिखलाता है और इस शिक्षा को महान अनुयाइयों को समाधि के अनुभव तथा प्राप्ति में व्यक्तिगत प्रगति के दौरान मन की ग्रंथियों को खोलने के अपने अनुभवों को वर्णित करने को कह कर, सुदृढ़ करता है। यह इन्द्रियग्राह्य जीवों के बीच अत्यन्त व्यक्तिगतता तथा उनकी अनुभवों की दुनियाओं को दर्शाता है और फिर प्राप्ति की कठोर साधना के हेतु उपलब्ध साठ अनुभवातीत शक्तियों को प्रस्तुत करता है। यह मन को पर्याप्त रूप से साधने के लिये लाभकारी युक्तियों और अंततः महान धरणी अर्थात् अपने महानतम अनुभव की शक्ति का प्रतीक, नामों और शब्दों के रहस्यमयी सम्मिश्रण को प्रकट करता है। यह सहजता तथा मुक्ति के उच्चतम से लेकर कल्पनातीत बंधन तथा कष्ट भरे निम्नतम तक के छः विद्यमान मंडलों को दर्शाता है। और फिर इन सभी धारणाओं की असत्यता (नैव–समज्ञान–समज्ञ–यातना) तथा सत्य की ही कल्पनातीत एकता तथा शुचिता को दर्शाता है।

तीसरी महान शिक्षा का संबंध उच्चतम, परिपूर्ण प्रज्ञा (अनुत्तर–सम्यक्–सम्बोधि) की प्राप्ति तथा स्वर्गीय स्थानों में भी इसकी प्राप्ति के मार्ग में बाधक दुष्ट माराओं में केन्द्रित संकटों से है। अपने वर्तमान तथा भविष्य के शिष्यों को विदाई के उपहार के रूप में वे यह परामर्श देते हैं कि किस

प्रकार पाँच इंद्रियों तथा छः इन्द्री–मनों से उपजी धारणाओं में छिपे इन दुष्ट प्रभावों से निबटने की युक्तियों को प्रदान करते हैं, जिससे वे अपने ही प्रयासों द्वारा महानतम सिद्धि को प्राप्त कर सकें– परन्तु, यदि वह असफल रहे, तो महान धरणी की लोकातीत शक्ति में निष्ठा रखते हुए।)

सर्वोच्च बोधिसत्वों के कुछ आध्यात्मिक अनुभव :

(जो कि सुरंगम सूत्र से उद्धारण हैं)

उसके पश्चात भगवानश्री ने एकत्रित सर्वोच्च बोधिसत्वों–महासत्वों तथा महान अर्हतों के सामने, जो कि सभी मादक दृव्यों से मुक्त थे, इस अति पावन शिक्षा को प्रकट किया, उन्होंने कहा :

आदरणीय बोधिसत्वों, महासत्वों तथा महान अर्हतों? आप सभी बहुत लंबे समय से मेरी शिक्षाओं का पालन कर रहे हैं और पूर्ण मुक्ति की अवस्था को पा चुके हैं। जो कुछ मैं आप से कहने जा रहा हूँ, उसकी भूमिका के तौर पर मैं आप से ये पूछना चाहता हूँ कि आप में प्रत्येक ने से यह समाधि की अवस्था कैसे प्राप्त की? जब प्रारंभिक अवस्थाओं में आप ने अपने भक्ति और साधना के बीच ये अनुभव करना शुरू किया कि अठारहों मानसिक अंगों, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, जो सभी मिथ्या हैं, वास्तव में जिनका अस्तित्व है ही नहीं, तब इनमें से कौन सा आपका समायोजन था, जिसके द्वारा आपने समाधि प्राप्त की?*

तब महाकश्यप, भिक्षुणी सुवर्णा तथा उनके आध्यात्मिक परिवार की अन्य भिक्षुणियों सहित अपने आसनों से उठे और उन्होंने भगवान बुद्ध को प्रणाम करके यह कहा :

हे धन्य प्रभो? पहले कल्पों में जबकि बुद्ध कंद्रसूर्यप्रदीप जीवित थे, मैंने बड़ी श्रद्धापूर्वक उनकी सेवा की और उनकी शिक्षाओं को ध्यान

---

* अठारह अंग, जिनका कि ज़िक्र किया गया है। इस प्रकार हैं, जैसे कि 'देखने' के लिये,
(क) देखने की इंद्री– आँख।
(ख) दृश्यमान विषय।
(ग) देखने का बोध, जो कि (क) के (ख) से संपर्क से होता है।
तथा, छः अवस्थाएँ : (1) देखना (2) सुनना (3) सूँघना (4) स्वाद (5) स्पर्श व (6) बोध।

से सुना और उन पर आचरण किया। उनके निर्वाण प्रवेश के पश्चात् मैं उनके पवित्र स्मृतिचिन्हों पर भेंट चढ़ाती रही और उनकी मूर्ति को सदा संवारती रही और उनकी शिक्षाएँ दीपक की तरह से मेरे जीवन को प्रकाशमय करती रहीं। उनके पवित्र अवशेषों और मूर्ति के प्रति श्रद्धा से मेरा मन एक सुवर्ण ज्योति से भर गया, जिसकी चमक मेरे आगामी जीवनों में व्याप्त होती रही और मेरे शरीर प्रवेश कर स्थाई रूप से जामुनी-स्वर्णिम आभा बन गई।

फिर सारिपुत्र अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को नमस्कार करके कहने लगे :

हे धन्य भगवन्? गंगा के बालू-कणों के जितने अनगिनत कल्पों से मेरा मन पवित्रता को बनाये रखे चला आया है, और इसी कारण बहुत से पवित्र पुनर्जन्म मुझे मिले। संसार तथा मुक्ति के रास्ते में सतत् होने वाले परिवर्तनों को ज्यों ही मेरे नेत्रों ने पहचाना, मेरी बुद्धि ने तुरन्त उनको पहचाना और इसी कारण मैं पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर पाया। एक दिन जब मैं जा रहा था, तो मेरी भेंट भ्राता कश्यप से हुई, जिन्होंने कृपा करके भगवानश्री के आदेशों को, कि प्रत्येक वस्तु कारणों और दशाओं से उत्पन्न होती है और इसीलिये वह रिक्त और परिवर्तनशील होती है, मुझे समझाया और तब मैंने पवित्र मन के तत्व की असीमता का अनुभव किया। उस समय से मैंने अपने भगवानश्री का अनुसरण किया और मेरी मानसिक दृष्टि अंतर्ज्ञात और पूर्ण रूप से ज्योतिर्मय हो गई, जिससे मैंने तत्काल ही एक निर्भयता और मुझे आत्म-विश्वास की प्राप्ति हो गई। इसीलिए, मुझे अर्हत के पद का सौभाग्य मिला और मैं वस्तुतः अपने भगवानश्री बुद्ध का प्रथम राजकुमार बन गया, जिसका भगवनश्री की सत्य वाणी से उत्पन्न और उनके निजी धर्म द्वारा परिपुष्ट और रूपांतरित हो सका।

प्रभु? आपके प्रश्न के प्रति कि हमें पहला निर्वाण प्राप्ति का अनुभव कैसे हुआ, मैं उत्तर यह दूँगा कि अठारह मानसिक-क्षेत्रों का, जो कि पदार्थों के उनके इंद्रियों के द्वारा विषयों क्षेत्रों से संबंधित हैं, मेरा पहला समायोजन, मेरे मन में अंतर्ज्ञात ज्योति के कारण हुआ, जिसकी किरणों ने मेरी बुद्धि को प्रज्ज्वलित किया, और आगे अंतर्मुख

होकर जहाँ तक मेरी अंतर्दृष्टि प्रविष्ट हो सकती थी, वहाँ तक अनुभव में विकसित होती चली गई।

तब समंतभद्र अपने स्थान से उठे और भगवान बुद्ध को नमस्कार कर कहने लगे :

मैं अपने भगवानश्री के धर्म का राजकुमार बहुत कल्प पूर्व ही बन चुका था और ब्रह्मांड की दसों दिशाओं के अनगिनत तथागतों ने अपने शिष्यों को, जो कि बोधिसत्व-महासत्व बनने के अधिकारी थे, समंतभद्र की सभी प्राणियों के प्रति अविच्छिन्न करुणा की शिक्षा का अभ्यास करना सिखाया, ताकि उनके नाम का प्रचार हो सके। मेरे मन की अंतर्ज्ञात अंतर्निहित श्रवणशक्ति अति पवित्र और पारदर्शी हो गई, जिससे मैं उसका उनका सभी प्राणियों के विचारों और भावों को समझने में समर्थ हो सका। ब्रह्मांड के किसी भाग में भी यदि ऐसे प्राणी हों- चाहे वे भूत, भविष्य या वर्तमान काल में हों- जो कि समंतभद्र की अविच्छिन्न करुणा को अपने मन के अन्दर विकसित करने के इच्छुक हों- चाहे वे भूत, भविष्य या वर्तमान काल में हों- अपने श्रवण की सूक्ष्मग्राहिता के कारण मुझे उनकी तरंगों का ज्ञान हो जायेगा, और उसके बाद मैं उनके पास छः दातों वाले रहस्यमय हाथी पर सवार होकर पहुँचूंगा और अपनी आकृति के लाखों अभिव्यक्तियों द्वारा एक ही समय उन में से प्रत्येक को मैं उनके स्थान पर मिलूँगा। उसके चाहे कितने ही विघ्न हों, गहरे और गंभीर, मेरी उपस्थिति के महत्व को वह अनुभव कर सकें या न का सकें, मैं उसके निकट हूँगा, ताकि उसके मस्तक पर अपना हाथ रख सकूँ, जिससे कि उसे उत्साह और सहारा मिले, शांति और सांत्वना मिले, जिससे वह अपनी परम सिद्धि को प्राप्त कर सके। जैसे कि भगवानश्री ने हमसे पूछा है कि अपनी अठारह मानसिक अंगों, जो कि इंद्रियग्राह्य पदार्थों से ता'ल्लुक रखते हैं, इनमें से कौन-सा सर्वप्रथम प्रदीप्त हुआ, मेरा कहना यही है कि मेरे संबंध में यह आंतरिक श्रवण से अपने सारभूत मन तथा उसकी तत्काल समझ और प्रतिक्रिया से संभव हो सका।

तब पूर्ण मीतालुनीपुत्र अपने स्थान से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके कहने लगे :

हे धन्य प्रभो? अनंत कल्पों तक मुझे शून्यता तथा दुखभोग के धर्मों का प्रचार करने की बड़ी स्वतंत्रता थी, और इसके कारण मैंने अपने मानसिक सारतत्व का अनुभव पा लिया है। अपने प्रचार के दौरान मैंने अनेक धर्म–द्वारों की व्याख्या पूर्ण तथा आश्चर्यजनक ढंग से, बड़े विश्वास तथा निर्भयता के साथ सभी जगह तथा बड़ी–बड़ी सभाओं में की है। अपनी वाक्पटुता के कारण, भगवानश्री ने मुझे उत्साहित किया है कि मैं अपनी वाणी के चक्र द्वारा इसका प्रयोग धर्मप्रचार में करूँ। उन प्राचीन दिनों से, जबसे भगवान हमारे मध्य में विराजमान हैं, मैंने अपनी सेवाओं को समर्पित कर दिया है। धर्म चक्र प्रवर्तन के लिये और अपने आंतरिक श्रवण के विकास से हाल में मैंने अब अर्हत का पद पाया है। इसके कारण अब मैं धर्म की अंतर्ज्ञात ध्वनि से अभिज्ञ हूँ, जो कि शेर की गर्जन के समान गूंजती रहती है। परिणामस्वरूप, मेरे प्रभु आप ने मुझे अपने रहस्यमय धर्म का सबसे बड़ा प्रचारक मानकर आदर दिया है।

जैसे कि मेरे प्रभु ने पूछा कि मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समायोजन था, तो मैं ये कहूँगा कि मेरा सर्वप्रथम पूर्णतया मानसिक ध्यान का संकेन्द्रन रहस्यमय धर्म की आंतरिक ध्वनि द्वारा अपने आंतरिक राग–द्वेषों पर विजय प्राप्त की और सभी मादक द्रव्यों का उन्मूलन किया, जो आंतरिक नाद के सुनने से ही संभव हो सका और जो रहस्यमय धर्म का अभिन्न अंग है।

तब महान मौद्गल्यायन अपने स्थान से उठे और भगवान बुद्ध को नमस्कार करके कहने लगे :

हे धन्य प्रभो? जब मैं सड़क पर भिक्षाटन कर रहा था, तब मुझे तीन कश्यप बंधु मिले, जिन्होंने मुझे भगवान तथागत के गहण कारणों और दशाओं के नियमों के बारे में समझाया। इन शिक्षाओं का मुझ पर बड़ा प्रभाव पड़ा और शीघ्र ही मुझे निर्मल ज्ञानबुद्धि प्राप्त हुई। भगवान मुझ पर इतने कृपालु हुए कि मुझे आपने अपने असली तन के लिये पोशाक़ प्रदान की, मेरी दाढ़ी और सिर मुंडवाये गए और मैं अपने स्वामी का अनुयायी बन गया। तब से मेरी आंतरिक

अंतर्ज्ञात शक्तियाँ बहुत ही आश्चर्यजनक ढंग से विकसित हो गई हैं। मैंने निर्विघ्न एक बुद्ध प्रदेश से दूसरे में, बिना यह जाने कि यह कैसे हुआ, बिना किसी आकाशीय रुकावट के प्रवेश कर ब्रह्मांड की सभी दस दिशाओं में यात्राएँ की हैं।

इस तरह मैंने अर्हत का पद प्राप्त कर लिया तथा सभी ने और तथागत भगवानश्री आप ने, पूर्ण ज्ञानोदय, महान मानसिक पवित्रता, अंतर्ज्ञात शक्तियों के प्रदर्शन में सहजता और निर्भीकता के लिये सर्वोच्च माना है।

जैसे कि भगवानश्री आपने हमसे पूछा कि मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समायोजन था, मेरा सर्वप्रथम पूर्णतया मानसिक ध्यान का संकेन्द्रन अपने मन को प्रशांत प्रतिच्छाया में तन्मय होने से हुआ, जो रहस्यमय रूप से प्रकाशमयी प्रदीप्ति में विकसित हो गई, जैसे मेरा मन, जो कि कीचड़ भरी धारा के समान था, तत्काल स्पष्ट तथा पारदर्शी हो गया, बिल्लौर के गोले की तरह।

तब बोधिसत्व–महासत्व अक्ष्योभ्य अपने स्थान से उठे और नमस्कार करके भगवान बुद्ध से कहने लगे :

हे धन्य प्रभो! भगवान तथागत और मैंने बहुत समय पहले ही भावातीत असीमता के शरीर की प्राप्ति बुद्ध समता–प्रबाश के अवतार के समय में ही कर ली थी। उस समय, मेरे पास चार अनमोल मोती थे, जिनमें अग्नि तत्व की पारलौकिक भेदक शक्ति थी, जिसके कारण मेरी अंतर्दृष्टि में सभी कुछ देदीप्यमान रूप से स्पष्ट दिखाई देता था– यहाँ तक कि सबसे दूरस्थ ब्रह्मांड का सबसे सुदूर बुद्ध प्रदेश भी इन जादुई रत्नों की ज्योति में सभी वस्तुएँ निर्मल आकाश की भाँति शून्य, और पारदर्शी लगने लगीं। और इससे भी अधिक यह कि मेरे मन में एक बड़ा सा दर्पण प्रकट हो गया, जो कि अद्‌भुत रूप से स्वदेदीप्यमान था, जिससे कि सभी को आलिंगनबद्ध किये असीम आकाश में दूर तक फैली दस प्रकार की अचरजपूर्ण, गुणकारी किरणें दूर–दूर तक फूट रही थीं। इस चमत्कारी दर्पण में धन्य [बुद्ध] के सभी राजसी महाद्वीप प्रतिबिंबित हो रहे थे और वे मेरी

देह से आने या जाने की ऐसे विलीन हो रहे थे, जैसे कि विभिन्न रंगों की ज्योतियाँ बिना किसी आने या जाने की किसी रुकावट के मेरे शरीर के साथ विशुद्ध ज्योति तथा असीम आकाश की स्वच्छंदता से घुल-मिल रही हों। इस जादुई शक्ति से मैं सभी बुद्ध प्रदेशों में प्रवेश पा सका था और पूजा उपासनाओं की बुद्ध-सेवाओं में बड़ी सहजता से और सुविधा के साथ शामिल हो सका था। यह इंद्रियतीत शक्ति मेरी गहन चार महान तत्वों के स्रोत की अंतर्दृष्टि के कारण प्राप्त हुई थी, जिससे मुझे यह पता चला कि वे केवलमात्र प्रकट-अप्रकट होतीं झूठी परिकल्पनाएँ थे, जो कि मूल रूप में केवल आकाश की भांति रिक्त थे तथा पावन आकाश के रूप में बिना किसी भिन्नता के और मैंने अनुभव किया कि सभी असंख्य बुद्ध प्रदेश, वाह्य और मानसिक, सभी कुछ उसी कल्पनातीत पवित्रता के हैं। इस अंतर्ज्ञात दृष्टि से मैंने परिणामस्वरूप दृढ अ-पुनर्जन्म की समाधि प्राप्त की।

जैसे कि भगवानश्री ने हमसे पूछा कि मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समायोजन था, तो मैं यह उत्तर दूँगा कि मेरे संबंध में ऐसा मेरी परिपूर्ण आंतरिक प्रज्ञा तथा आंतरिक दृष्टि से संभव हो सका। खुले आकाश की अग्नितत्व से ज्योतिवंत हुई असीमता की और उस शक्ति से मैंने सर्वोच्च समाधि को और समापत्ति की इंद्रियातीत शक्ति को प्राप्त किया।

तब भगवान बुद्ध के धर्म के राजकुमार, विजूरिया अपने स्थान से उठे और भगवान के चरणों में प्रणाम करके कहने लगे :

हे धन्य प्रभो? मुझे स्मरण आता है कि अनेकानेक कल्प पूर्व संसार में अमितायुष नामक एक बुद्ध अवतरित हुए, जिन्होंने तमाम बोधिसत्वों-महासत्वों को आश्चर्यजनक मनस्तत्व की सहजानुभूत और मूलभूत प्रकृति के बारे में शिक्षा दी और उन्हें अपने मन को संसार की और उसके अंदर बसने वाले सभी संवेदनशील प्राणियों की तात्विक अभिन्नता पर केन्द्रित करने को प्रेरित किया कि वे सभी समरूप से आकाश तत्व और उसकी श्वास-प्रश्वास की लयबद्ध कम्पन के, जो कि अन्य सब कुछ को अभिव्यक्त करती है, अभिरूप थे। अपने ध्यान

के अभ्यास में मैंने इस पर संकेन्द्रन किया और इस बात पर मनन किया कि इतना बड़ा संसार किस प्रकार अंतरिक्ष में थमा हुआ है और अंतरिक्ष में ही सदा घूमता रहता है, इतना बड़ा संसार कैसे सदैव गतिशील रहता है, श्वास-प्रश्वासों से सुव्यवस्थित व सम्पोषित तालयुक्त हिलोरों तथा मन में उठते-बिखरते विचारों की हलचल से मेरा अपना शरीर कैसे गतिशील रहता है और चलता-फिरता है। इन सभी विविध बातों पर, उनकी स्पंदन की गति को छोड़कर, बिना किसी अंतर के उनकी महान एकरूपता पर मैंने चिन्तन किया। मैंने यह समझ लिया कि इन ध्वनितरंगों के स्वरूप का न तो कोई स्रोत ही था, जहाँ से कि वे आती हों और न ही कोई गन्तव्य जहाँ कि वे जाती हों और सब संवेदनशील प्राणी इतने ही बहुसंख्यक हैं, जितने कि विशाल आकाश में मिट्टी के अनगिनत अनंत कण और सभी उलटे-पुलटे अपने-अपने ढंग से संतुलित कम्पन हैं। उन में से प्रत्येक इस भ्रांतधारणा से अभिभूत हैं कि वह सृष्टि की एक अनन्य कृति हैं। सभी तीन हज़ार महान सूक्ष्म ब्रह्मांडों के सभी इंद्रियग्राह्य प्राणी हैं, इसी भ्रांति से अभिभूत हैं। वे सभी किसी बर्तन में बंद और अंधाधुंध बौखलाहट में इधर उधर भिनभिना रहे अनगिनत मच्छरों की भांति हैं। कभी कभी-कभार वे अपने कारावास के सीमित दायरे के कारण पागलपन और कोलाहल करने पर उतर आते हैं। अपने भगवानश्री बुद्ध से मिलने के बाद, मुझे अंतर्ज्ञात अनुभव और निरंतर दृढप्रतिज्ञ अ-पुनर्जन्म का कृपास्थायित्व प्राप्त हुआ और मेरा मन ज्ञान सम्पन्न हो गया और मुझे पूर्वी स्वर्गों में स्थित अटल बुद्ध प्रदेश को देखने का अवसर मिला, जो कि अमितायुष बुद्ध की पवित्र भूमि है। मुझे प्रभु के धर्म का राजकुमार माना गया और मैंने प्रतिज्ञा की कि सर्वत्र ही सभी बुद्धों के प्रति सेवारत रहूंगा, और मेरे ज्ञानोदय और महान प्रतिज्ञा के कारण, मेरे और शरीर मन संपूर्ण-रूपेण लयबद्ध, सजीव और सक्रिय हो उठे तथा बिना किसी रुकावट के पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त होते हुए अन्य सभी तरंगों में घुल-मिल गए।

जैसे कि मेरे प्रभु पूछा कि मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला

समायोजन था, तो मैं ये कहूंगा कि मेरे संबंध में ऐसा आकाश-तत्व के स्वरूप की अंतर्जनित दृष्टि द्वारा संभव हो सका, कि कैसे इसकी संतुलित और लयबद्ध तरंगों के द्वारा सभी कुछ ज्योतिर्मय मन के आलिंगन में बंध गया और इस पर संकेन्द्रन करके कैसे मैंने समाधि को प्राप्त किया और उस समाधि में अद्भुत मनस्तत्व यानी बुद्धत्व की आनंदमयी कोष की विशुद्धता में सभी बुद्धों की पूर्ण एकात्मकता के बोध की सिद्धि प्राप्त की, जोकि बुद्धत्व की आनंद काय है।

तब बोधिसत्व महासत्व मैत्रेय अपने आसन से उठे और भगवान बुद्ध को नमस्कार करके कहने लगे :

हे धन्य प्रभो? मुझे याद आता है कि अनेक कल्पों पूर्व इस संसार में एक बुद्ध अवतरित हुए, जिनका नाम चंद्र-सूर्य-प्रदीप-प्रभाष था, जिनका शिष्यत्व ग्रहण करके मैंने उनका अनुसरण किया। उस समय मेरा रुझान दुनियावी जीवन की ओर था और मैं कुलीन वर्ग से संबंध रखना पसंद करता था। भगवान बुद्ध ने इसे देखा और मुझे ध्यान करने का मन की चेतनता पर संकेन्द्रित करके आदेश दिया। उनके आदेशों का पालन करने से मैंने समाधि प्राप्त की। इसी तरीक़े से उस समय से, मैंने अनेक बुद्धों की सेवा की है, और अब मैंने इससे सभी सांसारिक आनंदों की इच्छाओं को त्याग दिया है। जब बुद्ध दीपांकर संसार में प्रकट हुए, मैने शनैः शनैः परम अद्भुत व संपूर्ण समाधि या इंद्रियातीत चेतना को पा लिया था। इस सर्वोच्च समाधि में मैं असीम आकाश के प्रति चैतन्य था और मैंने यह अनुभव किया कि सभी तथागत—देश- चाहे वे पवित्र अथवा अपवित्र हों, अस्तित्व में हों या न हों- वे सभी मेरे अपने मन के ही कल्पना मात्र ही थे। मेरे भगवन्? मुझे संपूर्ण अनुभव से ये पता लगा कि तथागतों के ये सभी कलापूर्ण तरीक़े केवल मेरे अपने मन के ही सचेतन की प्रस्तुतियाँ ही थे, जिससे मेरी चेतना का सारभूत स्वभाव तथागतों के अनगिनत प्राकट्य रूपों में बह निकली और मुझे अपने भगवान श्री शक्यमुनि के पश्चात् आगामी अवतरण का बुद्ध चुना गया।

क्योंकि आपने मुझे अपने मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समाया.

ेजन था, के विषय में पूछा है, तो मेरा उत्तर यह है कि मानसिक अठारह अंगों में से मेरा सर्वप्रथम पूर्णतया ध्यान का संकेन्द्रन इस पूर्ण बोध से हुआ कि ब्रह्मांड की सभी दस दिशाएँ केवलमात्र मेरी अपनी चेतना के कार्यकलाप थे। यह इसी से था कि मेरी चेतना पूरी तरह से ज्योतिर्मय हो गई और मेरे मन की सीमाएँ समाप्त हो गईं, जब इसने सभी सत्य को प्रतिबंधित दावों और इंकारों का परित्याग करके, अंगीकार कर लिया, तब मैंने सम्पूर्ण अ–पुनर्जन्म की दृढप्रतिज्ञता को प्राप्त कर लिया।

तब महा–स्थाम–प्राप्त, भगवान के धर्म के राजकुमार अपने स्थान से उठे और उन्होंने उनके बोधिसत्व–महासत्वों के भ्रातृत्व के 52 सदस्यों के साथ मिलकर भगवान बुद्ध के चरणकमलों में नमस्कार किया और बोले :

हे धन्य प्रभो? मुझे याद आता है कि बहुत समय पहले, किसी पिछले कल्प में, इतनी कल्प पहले, कि जितनी गंगाजी में बालू के कण हैं, इस संसार में एक बुद्ध अवतरित हुए, जिनका नाम अमिताभ–प्रभाष बुद्ध था, जिनकी बुद्धभूमि पूर्वी स्वर्गों में थी। उस कल्प में 12 तथागत थे, जो निकट अनुक्रम में एक दूसरे के पीछे आये थे, जिनमें से अंतिम का नाम बुद्ध–चंद्र–सूर्य–गामिन था, जिसने मुझे "नमोः अमिताभ बुद्धाय" कहते हुए अमिताभ के नाम पर ध्यान करना सिखाया। इस अभ्यास की महत्ता इस में निहित थी कि जब तक कि एक व्यक्ति ध्यान का अपना तरीक़ा अपनाता है और दूसरा एक अन्य तरीक़ा, तो वे एक दूसरे को संतुलित करते और मिलते हैं, और ये ऐसा ही है जैसा कि न मिलना। जबकि, यदि दो व्यक्ति एक ही तरीक़े से अभ्यास करते हैं, तो उनकी मानसिकता गहरी से गहरी होती जायेगी और वे एक दूसरे का स्मरण करेंगे और एक दूसरे के प्रति आत्मीयता पैदा करेंगे, जो एक जीवन से दूसरे तक चलती रहेगी। जो अमिताभ के नाम पर संकेन्द्रन करते हैं, उनके साथ भी ऐसे ही है। वे अपने मनों में अमिताभ के सभी इंद्रियाग्राह्य जीवों के प्रति कृपालुता के उत्साह को धारण करते हैं। इससे भी बढ़कर, जो व्यक्ति अमिताभ बुद्ध का नाम उच्चारण करेगा, चाहे वर्तमान में या भविष्य में, सभी बुद्ध अमिताभ का दर्शन करेंगे और उससे कभी भी पृथक् नहीं रहेंगे। उस साहचर्य के कारण, जैसे सुगंधित गंधी के साहचर्य से सुगंधित हो जाता है, इसी तरह से

अमिताभ की कृपालुता से वह भी कोई किसी अन्य उचित साधना के द्वारा होगा और ज्योतिर्मय हो जायेगा।

हे धन्य प्रभो? मेरा अमिताभ के नाम का स्मरण करने का उद्देश्य केवल अपने वास्तविक पवित्र स्वभाव को पाने के सिवाय अन्य कुछ नहीं था, जिसे पाकर मुझे अ-पुनर्जन्म की दृढ़प्रतिज्ञता प्राप्त हो गयी है। अब इस जीवन में, मैंने अपने शिष्यों को "नमोः अमिताभ बुद्धाय" मंत्र के द्वारा अमिताभ के नाम स्मरण द्वारा संकेन्द्रन का आदेश दिया है, और मैं उन्हें ये भी सिखाता हूँ कि वे उनकी पवित्रता की भूमि में पैदा होने की कामना करें और उसे ही अपना एकमात्र शरणस्थल बनायें।

जैसा कि प्रभु मुझसे पूछा है, मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समायोजन था, तो मेरा कहना है कि मैने अपनी छः इंद्रियों के बीच कोई पृथक्ता या अंतर नहीं मानी, बल्कि उन सभी का विलय करके एक इंद्रियातीत विवेक माना, जिसके कारण मैंने सर्वोच्च समाधि और समापत्ति की कृपा पाई।

उसके बाद बोधिसत्व-महासत्व अवलोकितेश्वर अपने स्थान से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके कहने लगे :

हे धन्य प्रभो? मुझे स्मरण होता है कि गंगा नदी की रेत के कणों के समान अनगिनत युगों पहले संसार में एक बुद्ध थे, जिन्हें अवलोकितेश्वर कहा जाता था, जिनके आदेश से मुझे निर्वाणज्योति को ढूंढने का उत्साह मिला। मुझे सिखाया गया कि इंद्रियातीत श्रवण के वास्तविक स्वभाव पर अपने मन का संकेन्द्रन करूँ और उस साधना से मुझे समाधि मिली। ज्यों ही मैं उस धारा में प्रवेश करने की अवस्था तक आगे पहुँचा, मैंने, मैं कहाँ हूँ और कहा था, के सभी विचारों का त्यागने का निश्चय किया। विषय के विभेदन के बारे में बाद में मैंने आगे बढ़ने का विचार भी त्याग दिया और इस बारे में किसी क्रियाकलाप या स्थिरता का विचार मेरे मन में पुनः कभी नहीं उठा। अपने अभ्यास को जारी रखते हुए, मैं धीरे-धीरे आगे बढ़ा, जब तक कि मेरे अपनत्व तथा आंतरिक इंद्रियातीत श्रवण की श्रवण प्रकृति के विभेदन का त्याग नहीं हुआ। क्योंकि

मेरे मन में जब उस आंतरिक श्रवण के लिये कोई भावना की प्राप्ति नहीं रही, तो ज्योतिर्मयता तथा ज्योतिर्मय स्वभाव की सभी धारणाएँ मन से अनुपस्थित हो गईं।

जब मन में संपूर्ण रिक्तता की अवस्था आ गई, तो सभी मन की रिक्तता की अवस्था प्राप्त करने संबंधी मनमानी धारणाएँ त्याग दी गईं। जैसे ही विचारों के आने-जाने की मनमानी धारणाओं का पूर्ण रूप से त्याग हो गया, निर्वाण की अवस्था का विशुद्ध अनुभव प्राप्त हो गया। तब अचानक ही मेरा मन दैविक तथा भौतिक दुनियाओं से इंद्रियातीत हो गया, और दसों दिशाओं में शून्याकाश को छोड़कर अन्य कुछ नहीं रह गया, और उस अवस्थाओं में मुझे दो आश्चर्यजनक इंद्रियातीत अनुभव हुए। पहला तो था, इंद्रियातीत चेतना, जिसमें मेरा सम्पूर्ण रूप से सभी दसों दिशाओं के सभी बुद्धों के सार, रहस्यमय तथा ज्योतिर्मय मन के साथ अनुरूप हो गया, और यह, इसी प्रकार, सभी सम्पूर्ण रूप से बुद्धों के 'कृपालुता के महान हृदय' के अनुरूप हो गया। दूसरी इंद्रियातीतता यह हुई कि मेरा मन छः मंडलों के कारण, सभी इंद्रियग्राह्य प्राणियों के मन हृदयों के अनुरूप हो गया और उनके साथ इसने मुक्ति के हेतु वही उत्साह व उत्कंठा महसूस की।

हे धन्य प्रभो? उस बुद्ध अवलोकितेश्वर के प्रति मेरी भक्तिभावना उसने मुझे केवल इंद्रियातीत श्रवण के द्वारा मन को संकेन्द्रन का स्वर्णिम का साधन सिखाया। समाधि और, उससे भी अधिक, उसने मुझे वही कृपालुता शक्ति अवस्था में उस को पाने में मदद की, जिसे तथागतों ने पाया था, जिसके कारण मुझे 32 प्रकार के परिवर्तन प्राप्त हुए, जो संसार के किसी भाग में किसी भी समय मुक्ति की प्रार्थना किए जाने पर तत्काल प्रदान किया जाता है।

ये सभी परिवर्तन रहस्यमयी हीरक समाधि में पूर्णतः मुक्त रूप तथा सहजता से प्राप्त तथा कार्यान्वित हुए, जोकि मैंने अपने मन को इंद्रियातीत श्रवण पर ध्यान साधना द्वारा प्राप्त किए थे।

वरप्राप्त प्रभो? हीरक समाधि के साथ जो रहस्यमयी शक्तियाँ आती हैं तथा मेरे सभी इंद्रियग्राह्य जीवों की मुक्ति के हेतु उत्साह व उत्कंठा के पूर्णतः अनुरूप होने से, जो कि विश्व की छहों मंडलों तथा

दसों दिशाओं में हैं– चाहें भूत, भविष्य व वर्तमान काल में– तथा सभी इंद्रियग्राह्य प्राणियों के लिये 14 प्रकार की निर्भयताएँ, जो मेरे मन को ज्योतिर्मय किये हुए हैं, वरदान के रूप में देने में समर्थ हुआ है।

क्योंकि मेरे सम्पूर्ण समायोजन की मूल प्रकृति श्रवण इंद्रिय से अद्‌भुत रूप से विकसित होने के साथ-साथ सभी इंद्रियों तथा विभेदनशील मन, शरीर तथा मन को भी गंभीर और रहस्मयी ढंग से सम्पूर्ण व्यक्त रूप संसार में सभी को आलिंगबद्ध करती है, जिससे कि यदि कोई शिष्य मेरा नाम पुकारे, तो धर्म के किसी अन्य प्रभु के धर्म के राजकुमार की भांति ही, उसे वरदान और कर्मफल प्राप्त होंगे, चाहे वह उसी नाम या किसी अन्य नाम का प्रयोग करे। वरप्राप्त प्रभो! उनके कर्मफल के मेरे नाम पुकारने तथा किसी अन्य के किसी अन्य नाम पुकारने से एक समान होने के कारण मेरी ध्यान साधना है, जो मैंने सच्चे और सम्पूर्ण समायोजन द्वारा प्राप्त की।

हे धन्य प्रभो! मुक्तदायिनी शक्तियों की चौदह प्रकार के अभयत्व, जो सभी इंद्रियग्राह्य प्राणियों को आशीष प्राप्त कराते हैं, से मेरा तात्पर्य यही था। परन्तु संपूर्ण समायोजन की प्राप्ति के अतिरिक्त, परम ज्योतिर्मयता की प्राप्त होने के कारण, मुझे अन्य चार प्रकार की कल्पनातीत, अद्‌भुत तात्कालिता की उत्कर्षताएँ प्राप्त हुई हैं।

पहली उत्कृष्टता तो जैसी है, तैसी है, क्योंकि जब मैंने पहले इंद्रियातीत श्रवण प्राप्त किया और मेरा मन इसकी सार प्रकृति में तल्लीन हो गया और श्रवण, दर्शन, सूंघने, स्वाद तथा बोध स्पर्श की सभी प्राकृतिक शक्तियाँ पवित्र, यशस्वी एक सम्पूर्ण बोध के एकत्व में सम्पूर्ण पारस्परिक तथा समायोजन की ज्योतिमर्यता प्राप्त हो गई। इसके कारण, मुझे ये महान इंद्रियातीत मुक्ति मिली, यहाँ तक कि जब मैं इंद्रियग्राह्य प्राणियों को मुक्ति प्रदान करता हूँ, तो मैं अपने आपको अद्‌भुत रूपों में परिवर्तित सकता हूँ।

कभी-कभी मैं दयालुता के एकरूप में या न्याय के रूप में या संकेन्द्रन के रूप में या बुद्धि के रूप में प्रकट होता हूँ। परन्तु सभी में ये केवल मुक्ति के लिये तथा इंद्रियग्राह्य प्राणियों की रक्षा के लिये करता हूँ, ताकि वे भी ऐसी ही महान मुक्ति पा सकें।

दूसरी कल्पनातीत, अद्‌भुत तात्कालिक उत्कृष्टता ऐसी है, मेरी श्रवण तथा छः इंद्रियग्राह्य पदार्थों के संदूषण से मुक्ति के कारण। ये ऐसा ही है कि मा'नो दीवारों के पार से बिना किसी रुकावट के ध्वनियाँ जा रही हों। अतः मैं अपने आपको विभिन्न प्रकार के रूपों में निपुर्णता से बदल सकता हूँ और विभिन्न धारणियों का मंत्रोंच्चारण कर सकता हूँ और इन रूपों और मंत्रोंच्चारण को, इंद्रियग्राह्य प्राणियों को निर्भयता की इंद्रियतीत शक्ति देने हेतु, परिवर्तित कर सकता हूँ। इसीलिये दसों दिशाओं के सभी देशों में मुझे अभयतत्व की इंद्रियतीत शक्ति का दाता माना जाता है।

तीसरी अद्‌भूत संपूर्ण समायोजन के मूल तात्कालिक उत्कृष्टता मेरे उस ध्यान अभ्यास के कारण से है, जो मैंने पवित्र सारतत्व पर सकेन्द्रन से पाई, जिससे जब कभी कहीं मैं जाता हूँ, तो सभी इंद्रियग. ्राह्य प्राणियों को अपनी कृपा और दया की प्रार्थना हेतु अपनी जीवन तथा मूल्यवान वस्तुओं का बलिदान करने के लिए तत्पर कर पाता है।

चौथी अद्‌भुत संपूर्ण तात्कालिक उत्कृष्टता मेरे बुद्ध के आंतरिक मन की प्राप्ति तथा मेरी चरम की प्राप्ति के कारण है, जिससे मैं सभी तथागतों को विश्व की दसों दिशाओं में सभी प्रकार की भेंट दे सकता हूँ।

जैसा कि प्रभु मुझसे पूछा है, तो मेरा कहना है, मानसिक अठारहों क्षेत्रों में से, जो कि इंद्रियग्राह्य विषयों से ता'ल्लुक रखते हैं, कौन सा हमारा पहला समायोजन था, तो मेरा उत्तर है कि जब मैंने प्रथम, संपूर्ण समायोजन तब हुआ, जब मैंने आंतरिक श्रवण तथा विषयों से संदूषण से इंद्रियातीत मानसिक मुक्ति के द्वारा समायोजित समाधि के प्रतिबिंब की अवस्था को प्राप्त कर किया, जिससे मेरा मन दिव्य-धारा में तल्लीन और विलीन हो गया, और इस प्रकार मैंने हीरक समाधि प्राप्त की और ज्योतिर्मय हो गया।

हे धन्य प्रभो? उन पुरातन दिनों में बुद्ध अवलोकितेश्वर ने मेरी धर्म के द्वार की निपुणता पूर्ण प्राप्ति के लिये मुझे प्रशांसित किया और अपने एक बड़ी सभी में उन्होंने कहा कि मुझे भी अवलोकितेश्वर कहा जाये, जो कि प्रार्थनाओं को सुनते और स्वीकार करते हैं, जो

कि सबसे नम्र कृपालुता के बोधिसत्व हैं। इसलिये मेरी इंद्रियातीत श्रवण शक्ति सृष्टि की दसों दिशाओं में पहुँचती है तथा अवलोकितेश्वर का नाम मानव कष्टों और संकटों की पराकाष्ठा पर हावी रहता है।

मंजुश्री का संकलित विवरण :

तत्पश्चात धन्य भगवान सभी बुद्ध प्रदेशों से आये हुए तथागतों और सर्वोच्च बोधिसत्वों–महासत्वों के बीच अपनी गद्दी पर बैठ गए और उन्होंने अपने लोकातीत प्रताप को प्रकट किया। उनके हाथों, पैरों और शरीर से आलौकिक ज्योति की धारा फूटने लगी, जो निकल कर प्रत्येक तथागत, बोधिसत्व–महासत्व और धर्म के राजकुमार के मुकुटों में दमकने लगी। सृष्टि की सभी दसों दिशाओं में सुनहरी किरणें फैल गईं, जो कि भगवान बुद्ध तथा सभा में स्थित सभी बोधिसत्वों–महासत्वों, तथागतों तथा अर्हतों के मुकुटों में केंद्रित हो गई। साथ ही साथ जेता उपवन के सभी वृक्ष तथा उसके सरोवरों के तटों पर छपछपाती लहरें मा'नो धर्म के संगीत साथ गा रही थीं, और सभी प्रतिच्छेद करती उज्ज्वल किरणें रत्न जड़ा वैभव का जाल बना रही थीं और उनके ऊपर बिछी थीं। ऐसा शानदार दृश्य कभी कल्पित भी नहीं किया गया था और उस दृश्य से सभी शांत और विस्मित हो गए। अनजाने में ही, वे हीरक समाधि की प्रशांत अवस्था में जा पहुँचे और उन सभी के ऊपर तरह–तरह के रंगों यथा नीला, किरमिजी, पीला और सफ़ेद वाले कमल–पुष्पों की कोमल पखुड़ियाँ मंद–मंद वर्षा की भांति गिरने लगे, जो कि घुल–मिल कर स्वर्ग के खुले आकाश में वर्णक्रम के सभी रंगों में प्रतिबिम्बित होने लगे। उससे बढ़कर, सहा भूमि के पहाड़ों, समुद्र, नदियों तथा वनों के भेदभाव एक दूसरे में घुल–मिल कर विलीन हो गये और शेष केवलमात्र जीवन तथा ज्योति द्वारा जीवंत मूल सृष्टि की पुष्पांकित एकरूपता ही बची, जो न कि मृतक व जड़ावस्था में वरन् तालबद्ध, गीतों व स्वरों की अलौकिक ध्वनि से गुंजायमान, जो सुरीले ढंग से उठती–गिरती, विलय होती और फिर मौन में।

तब भगवान तथागत ने मंजुश्री, धर्म के राजकुमार को संबोधित करते हुए कहने लगे :

मंजुश्री! आपने अभी इन सभी सर्वोच्च सिद्धियों को प्राप्त महान बोधिसत्वों–महासत्वों को सुना, जिन्होंने उन साधनों के बारे में बताया

है, जिनसे उन्होंने अनुसंधान से आध्यात्मिक कृपाओं और समापत्ति की शक्तियों को जो उनके श्रद्धालु जीवन तथा साधनाभ्यासों द्वारा प्राप्त हुईं। प्रत्येक ने बतलाया कि शुरूआत विषयों के संपर्क में आये किसी एक मानसिक मंडल के संपूर्ण समायोजन से हुई, और फिर उससे सभी मानसिक क्षेत्र मंडलों के संपूर्ण समायोजन तथा समाधि, समापत्ति तथा उनके अंतर्ज्ञात तथा मूलभूत मन का संपूर्ण बोध प्राप्त हुआ। अतः हम देखते हैं कि सभी उनके श्रद्धापूर्ण अभ्यासों के भिन्न-भिन्न होते हुए तथा उनकी सिद्धियाँ व लगने वाली समय की मात्रा के बावजूद अंत में उसी समान अच्छे परिणाम में परिणीत हुए।

मैं चाहता हूँ कि आनंद इन ज्योतिर्मयता की सभी विभिन्न उपलब्धियों को समझें और अनुभव करें तथा यह देखें कि उसे कौन सी साधना उनके उपयुक्त बैठती है। और मैं यह कामना भी करता हूँ, क्योंकि मेरे निर्वाण के पश्चात् भविष्य में संसार के जिज्ञासु उच्चतर अनुत्तर-सम्यक्-संबोधि पाने के इच्छुक होंगे, इन अनुभवों से वे ये जानेंगे कि कौन से साधन का द्वार प्रत्येक को सर्वाधिक सहज बैठता है।

भगवानश्री को सुनने के बाद भगवान बुद्ध के धर्म के राजकुमार, मंजुश्री अपने स्थान से उठे और भगवान बुद्ध को प्रणाम करके, उनके गहन गरिमा के प्रभाव से गंभीर होकर उन्होंने ये छंद कहना आरंभ किया :

आदेशों का पालन करना ध्यान साधना का अनिवार्य अंग है। परन्तु नौसिखिये सम्पूर्ण समायोजन के लिए केवल उन पर ही निर्भर नहीं कर सकते...

तब मंजुश्री ने भगवान बुद्ध को संबोधित करके ये कहा :

हे धन्य प्रभो? क्योंकि मेरे प्रभु देवलोकों से इस सहा लोक में अवतरित हुए हैं, उन्होंने अद्भूत ज्योतिर्मयी शिक्षाओं से हमारी सहायता की है। पहले पहल उनकी शिक्षाओं को हम श्रवण इंद्रिय से ग्रहण करते हैं। परन्तु जब हम पूर्णरूप से इसका अनुभव कर लेते हैं, तो यह इंद्रियातीत तथा अलौकिक श्रवण शक्ति के द्वारा हमारी हो जाती है। इससे प्रत्येक नौसिखिये के लिये इंद्रियातीत श्रवण शक्ति की जागृति तथा सम्पूर्णता अत्यधिक महत्त्वपूर्ण हो जाती है। जैसे-जैसे शिष्य

के मन में समाधि प्राप्ति की इच्छा बलवती होती है, वह उसे अपने इंद्रियातीत श्रवण इंद्री द्वारा अवश्य प्राप्त कर सकता है।

कई कल्पों से, जो कि गंगा के बालूकणों की भांति अनगिनत हैं, अवलोकितेश्वर बुद्ध ने, जो प्रार्थनाओं को सुनने और परिपूर्ण करने वाला है, विश्व की दशों दिशाओं में फैली सभी बुद्ध भूमियों की यात्रा की है और मुक्ति और निर्भयता की अलौकिक शक्तियाँ प्राप्त की हैं, और सभी इंद्रियग्राह्य प्राणियों को बंधन व कष्टों से मुक्त करने का उनका संकल्प है। अवलोकितेश्वर का आलौकिक नाद कितना मधुर तथा रहस्यमयी है। यह विशुद्ध ब्रह्मनाद है। यह समुद्र की लहर के तट से टकराने की मंद सरसराहट है। इसकी रहस्यमयी ध्वनि सभी इंद्रियग्राह्य प्राणियों की मुक्ति एवं शांति प्रदान करती है, जो अपनी पीड़ा में सहायता मांग रहे हैं। जो निर्वाण की शांति को वास्तव में ढूँढ रहे हैं, उनको यह स्थिरता की भावना प्रदान करती है।

जबकि मैं अपने भगवान तथागत को संबोधित कर रहा हूँ, वे अवलोकितेश्वर की अलौकिक ध्वनि को साथ-साथ सुन रहे हैं। ये ऐसा ही है कि जब हम अपने ध्यान-साधना में शांत अवस्था में होते हैं, तो हमारे कानों में ढोल व नगाड़ों के बजने की आवाज़ आने लगती है। यदि इन को सुन कर हमारा मन निर्विघ्न और शांत हो जाये, तो समझो कि यही उस संपूर्ण समायोजन की अवस्था है।

किसी वस्तु के साथ संपर्क में आने पर शरीर में भावना पैदा होती है और दृष्टि की शक्ति पदार्थों की अपारदर्शिता के कारण अटक जाती है। इसी तरह से सूंघने और चखने की शक्ति भी, परन्तु मन की तार्किक-शक्ति के साथ ऐसा नहीं होता। विचार आते हैं, सम्मिश्रित होकर और गुज़र जाते हैं। साथ-साथ, यह अगले कमरे से और दूर से आती आवाज़ों के बारे में सचेतन रहता है; अन्य इंद्रियाँ इतनी सूक्ष्म नहीं होतीं, जितनी कि श्रवण इंद्रिय हैं और इस से ज्ञात होता है कि सुनने की प्रकृति ही अनित्यता की असली सच्चाई है।

गति और शांत अवस्थाओं- दोनों में ही शब्द के सार का अनुभव होता है; यह अस्तित्व से अनस्तित्व में गुज़र जाता है। जब कोई ध्वनि नहीं होती, यह कहा जाता है कि कोई कुछ सुनाई नहीं

दिया; परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि श्रवण की तत्परता इंद्रिय समाप्त हो गई है। वास्तव में, जब कोई आवाज़ नहीं होती है, तो श्रवण शक्ति सबसे अधिक चौकन्नी होती है, और जब कोई आवाज़ होती है, तो वह श्रवण इंद्रिय सबसे कम विकसित रहती है। यदि किसी साधक को प्रकट के और अप्रकट होने इन दो भ्रमों में से, जो अर्थात् मृत्यु और पुर्नजन्म से अलग कर दिया जाये, तो मा'नो उसने वास्तविक शाश्वतता को प्राप्त कर लिया है।

स्वप्न में भी, जब कि सब विचार शांत व समाप्त हो जाते हैं, श्रवण शक्ति अभी भी चौकन्नी रहती है। यह ज्योतिर्मयता के दर्पण की तरह से है, जो विचारशील मन से इंद्रियातीत है, क्योंकि यह दोनों, मन और शरीर की सीमा से परे है। इस सहा जगत में आंतरिक इंद्रियातीत ध्वनि के सिद्धांत को विदेशों में फैलाया जा सकता है, परन्तु इंद्रियग्राह्य प्राणियों की श्रेणी अपनी आंतरिक श्रवण क्षमता से अनभिज्ञ तथा उदासीन रहते हैं। वे केवल प्रतीयमान ध्वनियों की ओर आकर्षित होते हैं और संगतीमय और असंबद्ध स्वरों से क्षुब्ध हो जाते हैं।

आनंद की स्मृति के अद्‌भुत होते हुए भी, वह दुराचरण की लपेट में आने से बच नहीं सकता। वह निर्दयी समुद्र में इधर से उधर गोते खाता रहा। परन्तु यदि वह अपने मन को विचारों के बहाव से मोड़ लेता, तो शीघ्र ही व मनस्सार के गम्भीर विवेक को पा जाता। आनंद, मेरी बात सुनो? मैंने हीरक समाधि प्राप्त कराने वाली अवर्णनीय धर्म की ध्वनि की प्राप्ति के लिए सदा ही भगवान बुद्ध की शिक्षाओं का सहारा लिया है। आनंद? तुम सभी बुद्ध प्रदेशों की गुप्त-विद्या को बिना पहले अपने अंदर छिपी सभी इच्छाओं और अपने संदूषन और मोह के नशों से मुक्ति पाये, पाने की कोशिश की है, जिससे तुमने अपनी स्मृति में दुनियावी ज्ञान का भंडार बना रखा है और ग़लतियों और त्रुटियों की एक मीनार खड़ी कर ली है।

तुमने भगवान बुद्ध की शिक्षाओं को सुनकर उन्हें स्मृति में संचित कर रखा है। तुम अपने मन के भीतर आंतरिक धर्म की ध्वनि को स्वयं सुन कर उसका विचार आचरण करके क्यों नहीं शिक्षा ग्रहण करते? आंतरिक श्रवण का बोध अपने वश के अन्तर रूप से तो

हो नहीं सकता। कभी-कभी जब तुम इंद्रियातीत श्रवण का मनन करते हो, तो अकस्मात् ध्यान को कोई आवाज़ आकर्षित करती है और तुम्हारा मन उसे एक ओर छोड़ देता है और उससे पक्षपात करता है और इस प्रकार क्षुब्ध हो जाता है। ज्योंही तुम उस प्रतीयमान ध्वनि को नज़रअंदाज़ कर पाते हो, उस इंद्रियातीत ध्वनि की धारणा टूट जाती है और तुम अपने आंतरिक श्रवण का अनुभव कर सकते हो।

जैसे ही यह सुनने की इंद्रिय वापस अपने उद्‌गम में लौटती है और आप इसकी असत्यता को साफ़-साफ़ समझ पाते हो, तो तत्काल मन भी अन्य सभी इंद्रियों की असत्यता को समझ जाता है और तुरन्त ही अन्य देखने, सूंघने, चखने, स्पर्श और मनन की इंद्रियों के बंधन से छूट जाता है, क्योंकि वे सभी एक समान भ्रामक हैं और असत्यता के मायिक दृश्य ही हैं, और सभी अस्तित्व के तीनों मंडल कल्पित और हवा में लहराते कलियों की भांति अपने सच्चे रूप में देखे जा सकते हैं।

जैसे ही श्रवण की भ्रामकता के भान की मुक्ति होती है, तो सभी विषयपरक दृश्यप्रपंच लुप्त हो जाते हैं और अंतर्दृष्टि संपन्न मनस्सार संपूर्णरूपेण पवित्र हो उठता है। जब तुम एक बार मनस्सार की परम पवित्रता को पा लिया है, तो इसकी आंतरिक दिव्यता सभी दिशाओं में स्वभाविक रूप से दमक उठेगी, जैसे ही और तुम प्रशांत ध्यान में बैठोगे, तो मन पवित्र आकाश के साथ पूर्ण अनुरूपता में स्थित होगा।

आनंद! जैसे ही तुम इस विषयपरक संसार में लौटोगे, तो ऐसा यह एक स्वप्न की भांति लगेगा और तुम्हारा चिति बाला के साथ का अनुभव स्वप्न की भांति प्रतीत होगा और तुम्हारा शरीर भी अपना स्थिरत्व और स्थायित्व खो बैठेगा। ऐसा प्रतीत होगा मा'नो सभी मानव स्त्री-पुरुष मात्र किसी कठपुतली के चतुर जादूगर के प्रभाव से उत्पन्न हों, जिसके सभी कार्यकलाप सभी उसके नियंत्रण में हों या प्रत्येक मानव एक स्वचालित यंत्र जैसा लगेगा, जो एक बार शुरू हो जाने पर स्वतः ही चलता रहता है। लेकिन ज्योंही व स्वतः चालित यंत्र अपनी प्राणशक्ति खो बैठती है, उसके तमाम कार्यकलाप ही नहीं समाप्त हो जाते, बल्कि उसका अस्तित्व ही समाप्त हो जाता है।

इस प्रकार इन छः ज्ञानेंद्रियों के साथ है, जो कि मूलभूत रूप से एक ही एकीकृत तथा प्रबोधनकारी सुरत पर निर्भर है, लेकिन अज्ञानवश वे छः विभिन्न अर्ध-स्वतंत्र और कृतियों तथा रचनाओं में विभाजित हो गए हैं। यदि एक इंद्रिय मुक्त होकर अपने मौलिक रूप में आ जाये, क्योंकि वे असलियत में आपस में अपनी मौलिक उद्‌गम इतने घनिष्टता से जुडे हैं कि अन्य सभी इंद्रिय भी अपने कार्यकलाप छोड़ बैठेंगे और केवल एक विचारमात्र से ही सभी अन्य सांसारिक अपवित्रताएँ पवित्र हो जायेंगी और तुम संपूर्ण ज्योतिर्मयता को पा जाओगे। यदि फिर भी अज्ञान का कुछ मल बाक़ी रह जाये, तो तुम्हें और .ज्यादा उत्सुकता से अभ्यास करना चाहिये, जब तक कि संपूर्ण ज्योतिर्मयता न प्राप्त हो यथा एक तथागत की ज्योतिर्मयता।

इस महासभा में उपस्थित सभी भ्रातागण और आनंद, आप भी अपने बाह्यश्रवण के साधन को उलट कर आंतरिक श्रवण आरंभ कर अपने मनस्सार की संपूर्ण एकताकृत को सुनें, क्योंकि जैसे ही आप संपूर्ण समायोजन प्राप्त कर लेंगे, आप चरम ज्योतिर्मयता को प्राप्त कर लेंगे।

निर्वाण का यही एक मात्र मार्ग है और पहले आये तथागतों ने उनका अनुसरण किया। इससे भी अधिक, सभी वर्तमान तथा भविष्य के सभी बोधिसत्वों-महासत्वों को यदि संपूर्ण ज्योतिर्मयता का अनुभव पाना है, तो यह उनके लिए पुरातन युगों में न केवल अवलाकितेश्वर ने, बल्कि वर्तमान में भी साधक इस स्वर्णिम पथ पर चल कर संपूर्ण ज्योतिर्मयता को प्राप्त कर रहे हैं, और मैं भी उनमें से एक हूँ।

मेरे प्रभु ने हममें से प्रत्येक से यही पूछा है कि हममें से प्रत्येक ने उचित कौन सा रास्ता अपनाया है, जिससे निर्वाण के भव्य पथ पर चला जा सके, तो मैं यही कहता हूँ कि अवलाकितेश्वर ने सबसे उचित साधना को अपनाया, क्योंकि अन्य सभी साधना में भगवान बुद्ध की इंद्रियातीत शक्तियों का और मार्गदर्शन अनिवार्य है। यदि कोई अपनी सभी सांसारिक क्रियाकलापों को त्याग दे, ये फिर भी वह सदा ही इन अनेक अभ्यासों में तल्लीन नहीं रह सकता, क्योंकि वे विशेष साधन हैं, जो कि निम्न या उच्च श्रेणियों के शिष्यों के लिये उचित हैं।

परन्तु, जनसाधारण के लिये मन को आंतरिक नाद-श्रवण की इंद्री पर सकेंद्रित कर, धर्म-द्वार पर मनस्सार की अलौकिक ध्वनि का श्रवण अंतर्मुखी उचित तथा विवेकपूर्ण है।

हे धन्य प्रभो? मैं अपने प्रभु तथागत के आंतरिक सूक्ष्म गर्भ के प्रति नतमस्तक होता हूँ, जो सभी संदूषणों तथा कलंकों से संपूर्णतः मुक्त होने से अकथनीय और निर्मल है, और मैं अपने प्रभु से प्रार्थना करता हूँ कि आगामी सभी शिष्यों के हेतु अपनी अपार कृपा करते रहे, ताकि मैं आनंद तथा इस कल्प के अन्य इंद्रियग्राह्य प्राणियों को अपने मनस्सार के आंतरिक श्रवण के इस अद्‌भुत धर्म-द्वार पर, जो इस उचित साधना द्वारा अवश्य ही प्राप्य है, निष्ठा रखने की शिक्षा देता रहूँ। यदि कोई शिष्य अपने मन को ध्यानाभ्यास में इस इंद्रियातीत श्रवण के साधन का उपयोग करे, तो सभी अन्य ज्ञान-इंद्रियाँ अपने आप ही इससे संपूर्ण सामंजस्य से व्यवस्थित हो जायेंगी, और इस प्रकार मात्र इस आंतरिक श्रवण के साधन के द्वारा वह अपने सच्चे और मूलमन का संपूर्ण समायोजन प्राप्त कर लेगा।

तब आनंद और सभी अन्य सभासद मन और तन से पवित्रता प्राप्त कर गए। उन्हें एक भगवान बुद्ध की सर्वोच्च समाधि को अनुभव का गहन बोध की प्राप्ति हो गई। उन्हें ऐसे यात्री की तरह, जिसे किसी सुदूर प्रदेशों की यात्रा पर आवश्यक व्यापार के लिये दूर जाना हो, और आने-जाने के रास्तों से वह परिचित हो, विश्वास हो गया था। इस महासभा के सभी शिष्यों ने अपने-अपने मनस्सार का अनुभव किया और उसके बाद एकांत में रहने का निश्चय किया, ताकि सांसारिक झंझटों और कलंकों से दूर रहकर धर्म के नेत्र की ज्योति का निरंतर अनुभव कर सकें।

'तिब्बत की मृतकों की पुस्तक' बार्डो थोडोल (डॉ. डब्ल्यू.वाई. ईवान्ज-वैंट्ज़ द्वारा संपादित, लंदन 1957) से उद्‌धृत :

हे श्रेष्ठजन्मा? जब तुम्हारे शरीर व मन पृथक् हो रहे थे, तब तुम ने पवित्र सत्य की झलक तो पाई होगी, जो सूक्ष्म चमकदार तेजमय, चकाचौंध कर देने वाला, ज्योतिवान है, शानदार है और भव्य

तथा अद्भुत ज्योतिर्मयस्वरूप है। देखने में, यह ऐसा लगता है, जैसे यह एक मृगमरीचिका हो, बसंत ऋतु में भू-दृष्यपटल पर एक निरंतर स्पंदन-धारा में गुज़रती हुई। उससे डरना नहीं, न ही आक्रांत होना, न ही आश्चर्यचकित होना। वह आपकी ही वास्तविक स्वभाव व प्रकृति की कांति है; उसे पहचानो।

उस ज्योति के बीच में से, सत्य की वास्तविक सहज धुनि, जैसे कि हज़ारों बादलों के एक साथ गर्जन की ध्वनि हो, निकलेगी, लगातार गूंजती, उससे डरना कभी नहीं, भयाक्रांत नहीं होना, भयभीत नहीं होना। वही तुम्हारी अपनी ही वास्तविक प्राकृतिक ध्वनि है।

— पृष्ठ 104

हे श्रेष्टजन्मा? पंचरंगी ज्योति की फुलवारियाँ... कौंधती तरंगित और चौंधियाने वाली, जैसे कि रंगीन धागे होते हैं, कांतिमय और पारदर्शी, अद्भुत तथा विस्मयकारी... इतनी चमकीली कि आँख भी उसे बर्दाश्त नहीं कर सकती, तुम्हारे हृदय पर प्रहार करेगी।

उस पाँच रंगों की देदीप्यमान कांति से डरना नहीं, न ही आक्रांत होना। परन्तु यह जान लेना कि वह बोधज्ञान तुम्हारा अपना ही है।

उन कांतियों में से हज़ार बादलों की गर्जन जैसी ध्वनि गूंजेगी। एक ध्वनि लुढकती प्रतिध्वनि के साथ ध्वनित होगी।... तुम डरना नहीं, भागना नहीं आक्रांत न होना। उन ध्वनियों को... अपनी ही आंतरिक ज्योति जानना।

— पृष्ठ 129

पूज्य ताई ह्स्यू (चीनी बौद्ध भिक्षु) द्वारा विरचित पुस्तक, 'ध्यान में मेरे अनुभव' (भिक्कु आस्साजी द्वारा अनुवादित) से उद्धृत :

....इस समय से लेकर मैंने सन् 1908 से लेकर 1914 तक का अपना पुराना ध्यान का नित्यक्रम त्याग दिया। जब यूरोपीय युद्ध छिड़ गया, तो पश्चिमी सिद्धांत पर तथा बुद्धमत पर आधारित विश्व को बचाने के लिये मेरी अपनी शक्ति पर से मेरा विश्वास उठ गया। मुझे लगा कि इसे मैं करता रहा, यह व्यर्थ समय की बर्बादी होगी। अतः मैं पो-टो द्वीप पर चला गया, जहाँ मैंने अपने आपको अपनी

आध्यात्मिक प्रगति के हेतु एक मठ में एकांत में बंद कर लिया।

एकांत के दो-तीन महीने के बाद, एक रात जब मैं ध्यान में था, मेरा मन अधिकतर शांत हो गया, तो किसी नज़दीक के मंदिर से आती एक घंटे की आवाज़ मुझे सुनाई पड़ी। ऐसा लगता था कि उसी आवाज़ ने मेरे विचारों की कड़ी को तोड़ दिया और बिना कुछ जाने अगले दिन प्रातः तक और मेरी सुरत किसी आत्मविस्मृति जैसी अवस्था के अंदर चली गई, जब कि मैंने आराधना के घंटे की आवाज़ सुनी और दुबारा होश सम्भाला। पहले-पहल मुझे ऐसा ही लगा कि एक ज्योति पिघल कर मुझमें समा गई है। मुझे अपने-आपका और अन्य पदार्थों के और अन्दर-बाहर के बीच अंतर होने का भान नहीं रहा तथा यह भी पता नहीं रहा।

इस अनुभव के बाद, मैंने अपने जीवन की दिनचर्या में सूत्रों का पाठ करना, पुस्तकें लिखना और ध्यान करना, लगभग एक वर्ष तक करता रहा, और उस एक वर्ष के बाद मैंने विज्ञान विचारधारा की पुस्तकों का अध्ययन करने में समय लगाया। मैंने विशेष कर वेई-शी (विज्ञान) के अभिलेखों का अध्ययन करने में ख़ास ध्यान दिया। यहाँ मुझे एक और बार आत्मविस्मृति जैसी अवस्था का अनुभव हुआ। उन अभिलेखों के एक अनुच्छेद एक को मैं बार-बार आवृत्ति करके दुहराता रहता था, जिसका कि अर्थ था कि अनुबंधित वस्तुएँ और सत्य, दोनों ही आत्म-तत्व से पृथक् हैं। मैं ध्यान में आत्मविस्मृति जैसी अवस्था में चला गया। इस बार का अनुभव पहले के दोनों अनुभवों से भिन्न था। मैंने इसमें यह ज्ञात किया कि जो वस्तुएँ, जो अनुबंधों पर निर्भर हैं, उनका भी एक गहन और सूक्ष्म अनुक्रम है, जो बिना किंचितमात्र अस्तव्यस्तता के अतिलघु रूप से व्यवस्थित है।

मैं इस तरह का बोध ज्ञान, जब मैं चाहूँ, अनुभव कर सकता हूँ।

तीसरे अनुभव ने मुझे ये दिखाया कि कारण और प्रभाव का सत्य क्या है, जो कि हमें अपनी चेतना के अनुसार ही ऐसा दीखता है। ये सच है कि कारण और प्रभाव का नियम के अपने प्राकृतिक

रास्ते हैं, जिनमें कोई भी गड़बड़ी नहीं और वे सभी ठीक से व्यवस्थित हैं।

इन तीनों अनुभवों में से, प्रत्येक के बाद, मेरे अंदर शारीरिक और मानसिक तौर पर कुछ परिवर्तन हुए और मुझे दिव्य चक्षु, दिव्य श्रुति और पराचित्तज्ञान का भी अनुभव हुआ।

यदि ये छः अलौकिक शक्तियाँ संभव हैं, तो कर्म और पुनर्जन्म का सिद्धांत, जो कि दिव्य-दृष्टि और पूर्वनिवास-स्मृतिज्ञान (अपने तथा दूसरों के पिछले जीवनों का ज्ञान) के प्रदर्शन पर आधारित हैं, भी विश्वसनीय है।

जैन मत :

विद्या प्राप्ति के दो प्रकार हैं— यथा,

1. 'अघ दृष्टा' अथवा अपरा-विद्या : साधारण व्यक्ति के लिये, जो भौतिक सुख चाहता है।

2. 'योग दृष्टा' अथवा परा-विद्या : जो इंद्रियातीत अवस्थाओं से संबंधित है।

जैन मत के अनुसार, योग या निज को अनुभव करने तथा पूर्णत्व की प्राप्ति की विद्या को आठ अवस्थाओं में बाँटा जाता है, जो कि इस प्रकार हैं :

(क) मित्रा : दृष्टि बहुत ही मंदी होती है। घास के कणों की ज्योति से इसकी तुलना की जा सकती है, जो कि क्षणभंगुर है और अत्यंत ही मंद है। इस अवस्था में योगी अहिंसा, सत्य, ब्रह्मचर्य पालन आदि की प्रतिज्ञाएँ करता है। सभी प्राणी उसके लिये मित्र होते हैं। वह किसी से द्वेष नहीं रखता। अच्छे कामों और अच्छे विचारों उसे बड़ा सुख मिलता है, परन्तु इस अवस्था में उच्चतर अवस्था में जाना संभव नहीं हो पाता है।

(ख) तारा : यहाँ भी दृष्टि मंद होती है, परन्तु यह गोबर के उपलों आग सी होती है। यद्यपि दृष्टि यहाँ कुछ पहले से बेहतर होती है, परन्तु यह क्षणिक और मंद होती है। पवित्रता व्यक्ति के अल्पकालीन नियम यहाँ अपनाता है। बाहरी दुनिया के साथ संबंधों में भी वह पहले से अधिक पवित्र हो जाता है और वह अपने आपको महापुरुषों की पुस्तकें पढ़ने में तल्लीन

रखता है। जो कुछ उसकी आत्मा के उत्थान में मदद करता है, उस में वह अधिक रुचि रखता है।

(ग) बला : दृष्टि यहाँ भी मंद है, जो कि लकड़ी के जलने की ज्योति की तुलना में होती है। आसन किये जाते हैं। वह पद्‌मासन आदि सहजता से कर सकता है, परन्तु बाहरी आसनों का नहीं, अपितु आध्यात्मिक आसनों का लक्ष्य है। वह बाहरी आसनों में परिपक्व हो जाता है, परन्तु वह आत्मिक आनंद की कुछ झलकें भी प्राप्त करता है। वह शरीर से थोड़ा ऊपर उठ भी जाता है।

(घ) दीप्रा : इस अवस्था की तुलना दीपक या मोमबत्ती की ज्योति से की जाती है। इस अवस्था में वह केवल बाहरी ही नहीं, अपितु आंतरिक प्राणायाम की प्राप्ति भी कर लेता है। अब उसे पक्का विश्वास हो जाता है कि यह आत्मा ही है, जिसे प्राथमिक तौर पर अनुभव करना है। आत्मा को बचाने के लिये वह अपना स्थूल शरीर भी त्याग सकता है। आत्मा की पवित्रता को प्राप्त करने के लिये, वह कोई भी ख़तरों और मुसीबतों को मोल ले सकता है। आत्मा की ओर उसका रुझान बढ़ता चला जाता है। वह शांति का अनुभव करता है, जो पहले कभी नहीं हुआ।

(च) स्थिरा : रत्नों की ज्योति के समान, यह काफ़ी चमकदार और टिकाऊ है। वह संसार तथा सांसारिक पदार्थों को सही दृष्टिकोण से पहचानने लगता है। अत्याधिक पसंद और नापसंद लुप्त हो जाती है। वह स्थिर और शांत हो जाता है और यह अनुभव करता है कि वह अब शरीर नहीं है, अपितु उसमें स्थित कोई दैवी शक्ति है, वह आत्मा है, और इस अंतर को अनुभव करने लगता है कि उसका शरीर आत्मा से भिन्न है। वह अपने अंतर में उठती अनेक प्रकार की अचरजकारी स्वरलहरियों का अनुभव करता रहता है, जो समाधि की अवस्था के अनुकूल होती रहती है। शरीर और इंद्रियों की इच्छाएँ उसे पसंद नहीं रहतीं। प्रभु में उसका पूरा विश्वास होता है, आत्मा के पवित्र रूप में, और वह प्रयत्न करता रहता है कि वह पवित्र हो जाये, पूर्णतया पवित्र।

(छ) कांता : इस की तुलना तारे की ज्योति से की जाती है। यहाँ पर मन पर बड़ा नियंत्रण होता है। प्रभु की भक्ति, प्रेम और पवित्र आत्मा के ध्यान में मन सुख पाता है। इन उच्चतर चीज़ों में मन स्थिर हो जाता है, न

कि भौतिक सुखों और प्रसाधनों में। यहाँ वह इतना पवित्र हो जाता है कि उसे सिद्ध पुरुषों (मुक्त तथा महान आत्माओं) के दर्शन होते हैं। उसके कर्म इतने पवित्र हो जाते हैं कि महान संतों से भी उसे प्रेम मिलता है।

(ज) प्रभा : इस की तुलना सूर्य से की जाती है। यह तेजोमय और चमकदार है। इस अवस्था में सम्यक् ज्ञान का विशाल रूप से वर्धन होता है और ध्यान उसकी दूसरी प्रकृति और उसे अंतरतम में प्रसन्नता की प्राप्ति होती है। वह शांत रहता है, उसको मन और इंद्रियों पर बड़ा नियंत्रण रहता है।

(झ) परा : इस की तुलना चंद्रमा की ज्योति से की जाती है, जो प्रशांत, शांतिमय और शीतल है। यहाँ ध्यान सर्वोच्च स्तर पर होता है और वह उसमें तल्लीन रहता है। उसे समाधि (सम्यक्) की प्राप्ति हो जाती है और वह निष्कलंक हो जाता है। उसकी अवस्था भव्यता पूर्ण चंद्र के समान हो जाती है।

— श्री हरिभद्राचार्य विरचित योग दृष्टा समुच्चय से उद्‌धृत

जैन धर्मग्रंथों के उद्‌धरण (श्री पुप्फा भिक्कू विरचित, सुत्तागम- भाग दो **(1954 संस्करण)** से) :

तप अपने आप में ज्योति है और यह मानव शरीर में प्रदीप्त है।

— गाथा (44, पृ॰996)

शंख ध्वनि जैसी आवाज़ सुन कर और दो भ्रूमध्य के बीच नवोदित पुष्प की जैसी कमल की ज्योति का साक्ष्य कर, साधक अपने इष्ट, सत्गुरु के समक्ष होता है।

— गाथा (44, पृ॰1046)

जब ज्ञान ही ज्ञान जाकर परम ज्ञान में आश्रित होता है, तो ज्योति की कांति कौंध उठती है।

— समयस्सार

जिज्ञासु को एकांत में बैठकर एकाग्र ध्यान से, पंच-परमेष्ठी के महामंत्र पर एक बिंदुत्व सकेन्द्रन द्वारा ध्यान करने का परामर्श दिया जाता है।

— श्री सूत्रानंदी

ज़ोरोस्ट्रियनवाद :

ज़रतुश्तु चेतनता के महापुरुष थे और कई हज़ार वर्ष पूर्व उनका प्राकट्य हुआ। उनके द्वारा प्रतिपादित अवेस्ता की शिक्षाओं का सार पंथों की कई प्रार्थनाओं में मिलता है। एडमंड स्ज़िकेले, इन पंथों के बारे में हमें बतलाते हुए, अंतिम दो पंथों के बारे में हमें बताते हैं :

(क) जीवन-ज्योति पंथ :

अगला संप्रदाय, जो कि वर्णित है, वह है मानवता का पंथ या जैसे कि ज़ेन्द ग्रंथ, अवेस्ताओं में इसे वर्णित करते हैं, 'जीवन–ज्योति का पथ'। इसका क्या अभिप्राय है? ज़रतुश्तु घोषणा करते हैं कि यह ज्योति जो हमें मिली है, अत्यंत पुरातन युगों से चलती आई है, जिससे हमें पिछली पीढ़ियों का सम्पूर्ण विवेक तथा अनुभव प्राप्त हो पाता है, बिना अपने लिये फिर से उसी को आज़माने की ज़रूरत के, जो कि हज़ारों वर्षों से आज़माया और सही पाया जाता रहा है। ज़रतुश्तु के लिये, सबसे बड़ी ग़लती, जिसके लिये हम दोषी हो सकते हैं, यही है कि हमने इस 'जीवन–ज्योति' की उपेक्षा की है और इस पंथ के, जो कि इसका नाम वहन करता है, इसे केवलमात्र कुछ किरणों तक ही सीमित कर रखा है। इसको अनुपालन, जज़्ब करने के बजाय संपूर्णत्व में 'जीवन–ज्योति के पंथ' के बारे में अधिकतर वाक्यांश अवेस्ताओं की विस्पेरिद शीर्षकीय पुस्तक में मिलते हैं, जिसका शीर्षक हमारे 'सर्वदृष्टा' शब्द का ज़ेन्द समशब्द है।

(ख) शाश्वत जीवन का पंथ :

अवेस्ता का नौंवा और आख़िरी पथ तारों का पथ है, शाश्वत जीवन का पथ। प्राचीन काल में यह पथ अधिकतम प्रसिद्धि प्राप्त हुआ। और अधिकतम उद्धरण, जो ज़ोरोस्ट्रियनमत के बारे में संस्थापित यूनानी लेखकों की पुस्तकों में मिलते है, वे इसी से संबंधित है। ज़रतुश्तु के अनुसार, एक प्रकार ब्रह्मांडीय शक्ति है, जो कि सदैव वहाँ प्रकट होती रहेगी, जहाँ भी अनुकूल पूर्वपरिस्थितियाँ प्रस्तुत हों। जीवन एक ब्रह्मांडीय कृत्य है, सृष्टि का अंतर्जात गुण तथा अंतिम देश काल में एक सर्वव्यापक एकात्मता, जो किसी भी ग्रह पर संपूर्ण जीव श्रेणियों को जोड़ता है। कुछेक ग्रह या सौर्य–मंडल चाहे लुप्त या प्रकट होते रहें, पर इन निरंतर परिवर्तनशील

ग्रहों व सौर्य–मंडलों पर जीवन स्वयं लुप्त या प्रकट होकर, सृष्टि समान ही शाश्वत है। और मनुष्य इस शाश्वत जीवन का अंग है– इस ब्रह्मांडीय जीवन समुद्र का, जो कि सभी ग्रहों पर सभी प्रकार के जीवन का योगफल है। अवेस्ता के सबसे सुन्दर गीत, उसके 'शाश्वत–जीवन' पंथ के अंश में प्रस्तुत किये गये हैं।

इस जीवन तत्व को अवेस्थाओं में 'स्रोशा' नाम से कहा गया है (जिसका अर्थ है– प्रेरणा का देवता)। ज़ेन्द अवेस्ता में हमें मज़दा के लिये एक प्रार्थना मिलती है, जिसमें उनको, जिन्हें वे प्रेम करते हैं, 'स्रोशा' के देने के लिये स्तुति है।

रातु ज़रतुश्तु की धोषणा, 'गाथा उश्तावैति' में :

(समानांतर धर्मों के एक महान विद्वान, श्री एम. एच. तूत विरचित पुस्तक, जोरोस्ट्रियनवाद का अनुभवसिद्ध तत्वमीमांसा से) :

इस तरह से मैं 'शब्द' को प्रकट करता हूँ, जिसे मुझे सर्वाधिक अव्यक्त एकेश्वर ने सिखलाया है। वह 'शब्द' नश्वर प्राणियों के सुनने के लिये सर्वोत्तम है। जो कोई अनुसरण करेगा और अपना ध्यान मुझ पर केन्द्रित करेगा, उसे अपने लिये सर्व परिपूर्ण प्रभु और शाश्वतता की प्राप्ति होगी और पवित्र दिव्य सुरत की सेवा के द्वारा वह मज़दा अहूरा (प्रभुत्व) को प्राप्त करेगा।

— हा° 45-8

(श्री एम. एच. तूत विरचित अप्रकाशित पुस्तक, अहुरा वैति यास्ना से) :

शाश्वत गुरू के दिव्य मार्गदर्शन में :

सच्चे रास्तों में जीवनयापन करते हुए, जो कि दैवी मन के परिपूर्ण राज्य की ओर ले जाते हैं।

जहाँ पर सर्वदर्शी, स्वयंभू, जीवनदाता अपनी सर्वव्यापी सच्चाई में निवास करता है।

मैं दिव्य स्रोशा से आह्वान के द्वारा प्रेरित करता हूँ, जो कि आत्मिक सहायता देने वाली सभी दिव्य भेंटों में सर्वाधिक महान है।

— हा° 33-35

'सृष्टिकर्ता' शब्द के बारे में यह लिखा है :

उसकी सर्वव्यापी सत्ता से अपने प्रकटशील स्वत्व को आत्मसात् करते हुए।

सर्वदृष्टा, स्वयंभू, जीवनदाता प्रभु ने इस रहस्यकारी स्पंदन (शब्द) और सुरीली तानों को निमृत किया है।

दिव्य आज्ञा से, आत्म-विशुद्धि परक आत्माओं को, विश्व के हेतु व्यक्तिगत आत्म-बलिदान के लिये।

ऐसा कौन व्यक्ति है, जो कि अपने कृपालु मुखारविंद से ज्योतिर्मय उत्कृष्ट मन से इन दोनों- रहस्यकारी स्पंदन और दिव्य आज्ञा को दे सकता है, नश्वर जीवों के।

— हा० 29-7

यहूदीवाद व ईसाई धर्म :

यहूदी (Jewish) और ईसाई धर्मग्रंथों में प्रभु की स्पंदन सृष्टिकर्त्ता शक्ति के रूप में 'वर्ड' ('नाद') के संदर्भ भरे पड़े हैं और यही वह प्रसाधन है, जिसके द्वारा उस तक पहुँचा जा सकता है। बाइबिल के प्रारंभ में ही हम पढ़ते हैं :

आदि में परमात्मा ने स्वर्ग और धरती बनाए.. और परमात्मा ने कहा, "उजियाला हो जाये," और उजियाला हो गया।

— पवित्र बाइबिल (उत्पत्ति 1:1,3)

सेंट जॉन ने इसे इस प्रकार से विस्तृत रूप से समझाया है :

आदि में 'शब्द' ('वर्ड') ही था और 'शब्द' परमात्मा के साथ था, और 'शब्द' ही परमात्मा था। आदि में वही परमात्मा के साथ था। सभी पदार्थ उसी ने बनाये थे, और उसके बिना कोई ऐसी चीज़ बनी ही नहीं थी, जो कि बनी थी। उसी में जीवन था और जीवन ही मनुष्य की ज्योति थी। और वह ज्योति अंधकार में चमकती है, और अंधेरा उसे समझ पाता ही नहीं. ..। यही सच्ची ज्योति थी, जो इस संसार में सभी मानवों के भीतर उजाला करती है... और 'शब्द' सदेह हुआ और हमारे दरमियान आकर रहा (और हमने उसकी भव्यता को देखा,

वह भव्यता ऐसी ही थी जैसी कि पिता (परमात्मा) से एकमात्र उत्पन्न हुए की कृपा और सत्य से भरपूर।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 1:1-5,9,14)

अपने सबसे प्रसिद्ध दृष्टांतों में से एक में मसीह ने 'वर्ड' के प्रारम्भिक पक्ष को इस प्रकार समझाया :

देखो? एक बीज बोने वाला, बुआई करने गया। और ऐसा हुआ कि जैसे-जैसे उसने बीज बोये, कुछ बीज तो इधर-उधर गिर गए, और आसमान से पक्षी आये और उन्हें निगल गए। और कुछ पथरीली ज़मीन पर आ गिरे, जहाँ अधिक मिट्टी थी ही नहीं और तुरन्त ही वह वहाँ उग गए, क्योंकि वहाँ पर धरती-मिट्टी की गहराई तो थी नहीं। लेकिन जब सूरज तेज़ चमका, तो वे सभी सूख गए और क्योंकि उन में जड़ नहीं उगी थीं, अतः वे सभी मुरझा गए। कुछ बीज काँटों के बीज जा गिरे, परन्तु काँटों ने फैल कर उनका दम घोट दिया और वे फले नहीं। और अन्य कुछ बीज अच्छी धरती पर गिरे, जिनसे फल उगे, जो कि उग कर बढ़ गए। और उनमें कुछ के तीस, साठ या सौ फल उगे। और उन्होंने (क्राइस्ट ने) उनसे (शिष्यों को) कहा कि जिसके पास सुनने को कान हों, उसे सुनने दो...

इसी प्रकार बोने वाला 'शब्द' को बोता है। और जब ये इधर-उधर डाल दिए गये हो, जहाँ इन्हें बोया गया था; तो सुनने के बाद शैतान तत्काल आकर उसे 'शब्द' को जिसे कि उनके हृदयों में बोया गया था, छीन लेता है। ऐसे ही वो है जो कि पथरीली धरती पर बोये गये थे, वे भी ऐसे ही हैं, जो कि 'शब्द' को सुनकर उसको ख़ुशी से ग्रहण करते हैं और जड़े न होने के कारण, कुछ ही समय तक रहते हैं, पर बाद में जब 'शब्द' के कारण उन्हें कष्ट या यातना झेलनी पड़ती है, तो वे तत्काल क्रोधित हो जाते हैं। और जो काँटों के बीच बोये जाते हैं, वे 'शब्द' को सुनकर दुनियादारी, अमीरी के फ़रेब और कामुकता आदि में फंसकर उसको घोंटकर फलविहीन कर देते

हैं। और जो अच्छी ज़मीन पर बोये जाते हैं, वे 'शब्द' को सुनकर, उसे ग्रहण करते हैं, और उसको फलदार करते हैं– कुछ तीस, साठ या सौ गुणा।

– पवित्र बाइबिल (मरकुस 4:4-9,14-20)

बाइबिल के पुराने और नये नियमों में इस 'शब्द' या 'वर्ड' के, जो कि जीवनदात्री सुनाई देने वाली जीवनधारा है, संदर्भों में से कुछ यहाँ दिये जाते हैं* :

प्रभु के 'शब्द' से स्वर्ग बने... उसने जैसा कहा और वैसा ही हो गया।

– पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 33:6,9)

हे प्रभु! सदा के लिये ही आपका 'शब्द' स्वर्ग में स्थित है... मेरे क़दमों का मार्गदर्शन करने के लिये आपका 'शब्द' दीपक की तरह है और पथप्रदर्शक ज्योति है।

– पवित्र बाइबिल (भजन–संहिता 119:89,105)

प्रभु का नाम एक शक्तिशाली (किले की) बुर्ज के समान है। सदाचारी व्यक्ति उसमें घुसकर शरण पा जाता है।

– पवित्र बाइबिल (नीति–वचन 18:10)

घास सूख जाती है, फूल मुरझा जाता है, परन्तु हमारे 'प्रभु का शब्द' सदा ही स्थित रहेगा।

– पवित्र बाइबिल (यशायाह 40:8)

मैं तो दरअसल तुम्हें जल से ही दीक्षित कर पछतावा कराता हूँ, परन्तु जो मेरे बाद में आयेगा, मुझसे अधिक शक्तिशाली होगा, जिसके जूतों को पहनने के लायक मैं नहीं हूँ। वह तुम्हें पानी की बजाय 'पवित्र आत्मा' ('Holy Ghost') और अग्नि से दीक्षित करेगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 3:11)

---

* इस संदर्भ में क्राइस्ट की शिक्षाओं के लिए इसी लेखक की पुस्तक, *'सृष्टि का सिरमौर'* को देखें।

इंसान केवल रोटी से ही ज़िंदा नहीं रहेगा, परन्तु प्रभु के मुख से प्रत्येक निकलने वाले 'शब्द' से।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 4:4)

हवा वहाँ चलती है, जहाँ वह झुकती है। और तुम उसकी ध्वनि को सुनते हो, परन्तु ये आवाज़ कहाँ से आती है और कहाँ जाती है, ये नहीं बता सकते। ऐसे ही वह प्रत्येक प्राणी है, जो कि आत्मा से जन्मता है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 3:8)

निश्चय से मैं तुम्हें कहता हूँ कि जो कोई भी मेरा 'शब्द' सुनेगा और उसका यक़ीन करेगा, जिसने कि मुझे भेजा है, उसे सदा की ज़िन्दगी मिलेगी और उसका कोई दोषी नहीं पायेगा, पर मृत्यु से जीवन में स्थानांतरित हो जायेगा।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 5:24)

अब तुम उस 'शब्द' के द्वारा पवित्र हो चुके हो, जिसे मैंने तुमसे कहा है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 15:3)

संसार में से जो लोग आपने मुझे दिये, उनको मैंने आपका नाम प्रकट कर दिया.. मैंने आपका 'शब्द' उन्हें दिया...

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 17:6,14)

अपने सत्य द्वारा उन्हें पवित्र करो, आपका 'शब्द' ही सत्य है।

– पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 17:17)

जिसकी दिव्यता उसकी भव्यता प्रकट करती है और उसकी प्रतिमा व्यक्त करती है, और जिसकी शक्ति का 'शब्द' सब वस्तुओं को थामे है...

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 1:3)

प्रभु का 'शब्द' जीवनदायी है और शक्ति संपन्न है और किसी दुधारी तलवार से भी ज़्यादा तेज़ है, जो आत्मा और सुरत को भेदन कर छिन्न-भिन्न करता है, और शरीर के

जोड़ और मज्जा का, और वह हृदय के विचारों और इरादों का जानने वाला है।

– पवित्र बाइबिल (इब्रानियों 4:12)

सभी गंदगियों और शरारतों की अत्यधिकता को त्याग कर, नम्रता से उस 'शब्द' को ग्रहण करो, जो तुम्हारी आत्माओं को बनायेगा।

– पवित्र बाइबिल (याकूब 1:21)

नश्वर बीज से नहीं, बल्कि सदा के लिये अस्तित्व में रहने वाले 'प्रभु के शब्द' से पुनर्जन्म लेना है।

– पवित्र बाइबिल (I पतरस 1:23)

और मैंने देखा और अचरज! एक मेमना सियोन पर्वत पर खड़ा था, और उसके साथ एक लाख चवालीस हज़ार व्यक्ति अपने मस्तकों पर अपने पिता का नाम धारण किये थे। और मैंने एक आवाज़ स्वर्ग से आती सुनी, जो कि कई झरनों के बहने के समान थी, और एक महान बादल के गर्जन के समान थी, और मैंने वीणा बजाने वालों की आवाज़ सुनी, जो कि अपने वाद्यों पर स्वर निकाल रहे थे। और उन्होंने सिंहासन के और चार पशुओं तथा बुज़ुर्गों के सामने ऐसा गाया कि मा'नो एक नया गीत हो; और उन लोगों को छोड़कर, उस गीत को अन्य कोई मनुष्य नहीं सीख सकता था, सिवाय 144,000 जीवों के, जो धरती से मुक्त कर दिये गए थे।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्‌घाटन 14:1-3)

चाहे वे किसी भी संप्रदाय के हों कैथोलिक, प्रोटॅस्टेंट या ऑरथोडॉक्स– ईसाई संतों की साक्ष्य, सभी धर्मग्रंथ के संदर्भों की पुष्टि और स्पष्टिकरण करते हैं :

वे व्यक्ति, जिनमें 'शाश्वत शब्द' बोलता है, अनिश्चयता से मुक्त हो जाते हैं। एक ही 'शब्द' से सभी वस्तुएँ उत्पन्न होती हैं, और सभी उसी की गाथा सुनाती हैं। संसार से अधिक 'शब्द' से प्यार करो।

– थॉमस–आ–कॅम्पिस, इन दि इमिटेशन ऑफ़ क्राइस्ट

'प्रभु का शब्द' मनुष्य बना, ताकि तुम मनुष्य से यह सीख सको कि मनुष्य परमात्मा किस तरह से बनता है।

— क्लीमेंन्ट ऑफ़ एलेक्ज़ांड्रिया

दैवी सुंदरता की बिजली जैसी भव्यता अकथनीय तथा अवर्णनीय है। न ही वाणी उसका वर्णन कर सकती है, और न ही श्रवणशक्ति उसका बोध कर सकती है। चाहे हम प्रभात के चमकते तारे, चंद्रमा की आभा और सूर्य की दिव्यता का उदाहरण लें– इन सब की भव्यता की तुलना उस सच्ची ज्योति से किये जाने के योग्य नहीं है– यह तुलना अंधकारमयी रात्रि व अत्यंत भयंकर अंधकार और मध्यदिवस की दिव्यता की तुलना से भी कहीं सुदूर है। यह सुंदरता, जोकि जिस्मानी आँखों से अदृष्य है, केवल मन और आत्मा के द्वारा ही ज्ञात होती है। यदि यह ज्योति कोई संतों को ज्योतिर्मय करती है, तो यह उन के दिलों में एक असह्यनीय घाव पैदा कर देती है, इस चाहत से, कि वह दिव्य सौंदर्य का दर्शन जीवन की शाश्वतता तक होता रहे। इस सांसारिक जीवन से दुखी होकर, वे इसके एक क़ैदख़ाने होने की भांति, इससे नफ़रत करते हैं।

— सेंट बेसिल, महान

17वीं शताब्दी के, जर्मनी के लूथेरन मोची–महापुरुष, जैकब बोहिमे की शिक्षा 'शब्द' के इर्द–गिर्द केंद्रित है और निष्कर्षात्मक परिणाम प्रदान करती है कि क्राइस्ट की परा–विद्या शिक्षाएँ ('सुरत–शब्द योग') तरह से भुलाई नहीं गई थीं।

तुम यदि इस संसार में से हज़ारों क़िस्म के संगीत वाद्ययंत्रों को इकट्ठा कर लो और वे सभी सर्वश्रेष्ठ तरीक़े से बजाने के लिये साधे गए हों, और सर्वश्रेष्ठ वादक इकट्ठे होकर उन्हें बजाने लगें, तो भी ये सभी कुछ मिल कर कुत्तों के भौंकने और चिल्लाने से कुछ अधिक नहीं होगा, यदि उस दिव्य संगीत की तुलना में, जो दिव्य ध्वनि से निकलता है, और शाश्वतता से शाश्वतता तक बजता ही रहता है।

— दि औरोरा

जो कोई भी जीवन धारे हुए है, वह 'व्यक्त शब्द' में ही जीता है– शाश्वत् अभिव्यक्ति वाले देवदूत और दुनियावी परियाँ भी, समय की निमृती को पुनराभिव्यक्ति या श्वासों से तथा देवदूत शाश्वता की ध्वनि से अर्थात् प्रभु के 'व्यक्त शब्द' की आवाज़ से।

— मिस्टीरियम मैग्नम

शिष्य ने अपने सत्गुरु से कहा : "मैं कैसे इंद्रियातीत जीवन कब में प्रवेश कर सकता हूँ, ताकि प्रभु का साक्षात्कार पा सकूँ और उसकी वाणी सुन सकूँ?" उसके सत्गुरु ने कहा, "तुम अपने आपको एक क्षण के लिये भी उस अवस्था में फेंक सको, जहाँ कोई भी प्राणी नहीं निवास करता, तो तब तुम प्रभु को बोलते हुए सुन सकोगे।"

शिष्य : क्या वह क़रीब है या दूर?

सत्गुरु ने कहा : वह तुम्हारे अंदर है। यदि तुम कुछ देर के लिये तमाम अपने सोच-विचार छोड़ दो और इच्छाएँ छोड़ दो, तो उस अवस्था में तुम प्रभु की उस अनबोली आवाज़ को सुन सकोगे।

शिष्य : यदि मैं सोचना या इच्छा करना छोड़ दूँ, तो भला, उस प्रभु को बोलते हुए कैसे सुन सकता हूँ?

सत्गुरु : जब तुम स्वयं के बारे में सोचना और इच्छा करना छोड़ देते हो, तो तब तुम्हारी बुद्धि और इच्छाशक्ति शांत और शाश्वत शब्द तथा सुरत के प्रभावों से निष्क्रिय हो जातीं हैं, और जब तुम्हारी आत्मा उड़नशील हो जाती है और नश्वरता से परे, जब बाहिर्मुखी इंद्रियाँ तथा कल्पना शक्ति पावन अमूर्त में टिक जाते हैं, तब तुम्हें शाश्वत श्रवणशक्ति, दृष्यशक्ति और वाचनशक्ति का अनुभव प्राप्त होगा। इस प्रकार प्रभु अपनी आत्मा की इंद्रिय से तुम्हारे द्वारा सुनता और देखता है, और प्रभु तुममें बोलता है, और तुम्हारी आत्मा से फुसफुसाता है, और तुम्हारी आत्मा उसकी आवाज़ को सुनती है। इसलिये तुम धन्य हो, यदि तुम निज-मनन तथा

निज-इच्छा से स्थिर हो सकते हो और कल्पना और इंद्रियों के चक्र को रोक सकते हो... क्योंकि यह केवल तुम्हारी अपनी श्रवणशक्ति और इच्छाशक्ति से तुम अचरज करते हो, जिसके कारण तुम प्रभु को देख-सुन नहीं सकते।

— ऑफ़ दि सुपरसैंसुअल लाइफ़

ऐलीफ़स लेवी का, जो कि कैथोलिक पादरी हैं, आध्यात्मिक अनुभव निम्नलिखित है :

जब बुद्धि सूक्ष्म ज्योति (Astral light) से अतिआवेशित होता है, तो एक विशेष प्रकार का दृश्यप्रपंच होता है। दर्शन शक्ति, बाहर से हटकर, अंतर्मुखी हो जाती है, बाहर की 'सच्ची' दुनिया पर मा'नो रात्रि छा जाती है, जबकि आंतरिक स्वप्नजगत में अद्भुत प्रदीप्ति दमकने लगती है। शारीरिक आँखें भी मंद कंपन का अनुभव करती है और पलकों के अंदर ऊपर की ओर फिर जाती हैं। आत्मा तब प्रतिमा रूप में अपनी आवृत्तियों तथा विचारों को ग्रहण करती है। कहने का आशय है कि विचार तथा रूप के बीच अनुरूपता सूक्ष्म ज्योति में उस रूप के प्रतिबिम्ब को आकर्षित करती है, क्योंकि आकृति इस प्राण-ज्योति का आधार है। यह सर्वव्यापी कल्पना शक्ति है, जिसका न्यूनाधिक भाग अपनी और इंद्रियों की ग्राह्यता स्मृति के अनुसार हम सभी ग्रहण करते हैं। उसी के अंदर सभी छायारूपों, सभी असाधारण दृश्यों तथा अंतर्जनित आभासों का स्रोत है, जो उल्लास से विशिष्ट संबंध रखते हैं।

दिव्यदृष्टि के आभास के द्वारा ज्योति को अपनाने और अपने आप में लीन करना सबसे बड़े दृश्यप्रपंचों में से एक है, जिसका इस विज्ञान द्वारा अध्ययन किया जा सकता है। आगामी समय में शायद यह समझा जा सके कि देखना वास्तव में बोलना है और प्राणी के भीतर ज्योति की चेतना शाश्वत जीवन का धुंधला प्रकाश है। प्रभु का 'शब्द' स्वयमेव ही ज्योति को पैदा करता है और सभी बुद्धिमत्ताओं के द्वारा, जो कि

आकृति को कल्पित करती हैं और उन्हें देखने करने का यत्न करती है, उच्चारित किया जाता है, "उजियाला हो जाये।" चमक के रूप में ज्योति केवल उन आँखों के लिये विद्यमान है, जो उसे देखती हैं, और सौंदर्य की शोभायात्रा से अनुरक्त होती आत्मा अपने ध्यान को अनंत पुस्तक के उस ज्योतिर्मय लेख पर केन्द्रित करती है, जिसे प्रकट पदार्थ कहा जाता है, अपनी ओर से चिल्लाती है, जैसे कि प्रथम दिन के प्रभात के समय प्रभु के भव्य, सृजनकारी शब्द, "उजियाला हो जाये।"

....इस शक्ति के स्रोत को समझना, परन्तु उससे कभी मोहित और पराजित न होना ऐसा ही है, जैसा कि साँप के सिर को कुचलना। ऐसे रहस्यों में ही, 'चुम्बकत्व के सिद्धांत' के सभी भेद छिपे हैं, जो नाम सभी पुरातन इंद्रियातीत शक्तियों (ऋद्धियों-सिद्धियों) के प्रति लागू होता है। चुम्बकत्व का सिद्धांत चमत्कारों की जादू की छड़ी है। परन्तु ये केवल दीक्षितों के लिये ही है, क्योंकि अनियंत्रित और अशिक्षित लोगों के लिये जो इस से खेलेंगे या इस शक्ति को अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिये प्रयुक्त करेंगे, ये शक्ति वैसी ही ख़तरनाक है, जैसी कि रूपक-कथा के अनुसार बृहस्पति (Jupiter) के आलिंगन में आकर, बल्कि उस प्रतिमाओं में प्रचुर ज्योति, जो कि जगत के सभी मंडलों और पदार्थों में प्रदीप्त, बोलने और परिसंचरित होती है, महत्त्वाकांक्षी सिमली के विनाश की।

चुम्बकत्व के अनेक लाभों में से एक यह है कि ये अविवादित शाश्वतता तथ्यों द्वारा आत्मा की आध्यात्मिकता, एकता और उल्लास को दर्शाता है। और एक बार ये चीज़ें निश्चित कर ली जायें, तो प्रभु सभी बुद्धिमत्ताओं और सभी हृदयों में प्रकट हो जाता है। उसके बाद, प्रभु में विश्वास और सृष्टि के स्वरलहरियों से हमें महान धामृक सामंजस्य की ओर ले जाया जाता है।

पुरातन जगत के इस रहस्योद्घाटन से ये आशय मिलता है कि दिव्यदृष्टि का आत्मा के सर्वव्यापक अग्नि के, बल्कि उस

प्रतिमाओं में प्रचुर ज्योति, जोकि जगत के सभी मंडलों और पदार्थों में प्रदीप्त, बोलने और परिसंचरित होती है, समक्ष तत्काल आवेदन करने से होता है। यह आवेदन, इंद्रियों से मुक्त तथा परीक्षणों के अनुक्रमों से सशक्त होकर, इच्छाशक्ति की दृढता से किया जाता है। इसके लिये, पहले, साधन ज्योति से जुडकर दृष्टा या पैग़म्बर बन जाता था। फिर, इस ज्योति तथा अपनी इच्छाशक्ति के बीच परस्पर संचार स्थापित करके, वह ज्योति का निर्देशन, जिस प्रकार तीर की नोंक किसी एक दिशा में स्थिर रहती है, करना सीखता था। वह स्वेच्छा से औरों की आत्माओं को संघर्ष या शांति का संचार करता था। अपने समकक्ष सिद्धों से वह दूरस्थ संपर्क साधता था और सूक्ष्म रूप से वह स्वर्गिक सिंह के (Celebrated Lion) द्वारा चित्रित शक्ति से उपयोग लेता था। यहाँ उन महान असीरिआई आकृतियों का अर्थ, जो कि अपनी बाहों में पराजित सिंहों को लिए खड़ी है, ज्ञात होता है। सूक्ष्म ज्योति दूसरी तरह से दैत्याकार स्फ़िंक्सों (Sphinxes) द्वारा चित्रित की जाती है, जिनके शरीर सिंह के और सिर मागी (जादूगर) के होते हैं। शस्त्र के रूप में, सूक्ष्म ज्योति वह स्वर्णिक तलवार है, जिसको मिथ्रा (Mithra, मित्र) ने बैल के वध में प्रयोग किया था। और यही फ़ीबस (Phoebus) का तीर है, जिससे पाइथन (Python) नामक सर्प को भेदा गया था...

तमाम सूक्ष्म ज्योति को, जो कि विद्युत और आकाशीय बिजली का तत्व है, मानव की इच्छा पर निर्भर किया जा सकता है। इस अदम्य शक्ति को पाने के लिये भला क्या किया जाना चाहिये? ज़रतुश्तु ने हमें बतलाया है : हमें उन रहस्यमय संतुलन के गुप्त नियमों के बारे में जानना चाहिये, जो कि बुराइयों की शक्ति गुप्त परीक्षाओं द्वारा को निरंकुश करते हैं, जिसने कि भ्रम के प्रेतों को परास्त किया हो और उस ज्योति को सशरीर जकड़ लिया हो, जैसा कि याक़ूब को देवदूतों के साथ संघर्ष में दर्शाया गया है। इस शक्ति के द्वारा हमने उन

भ्रांतिमय कुत्तों को भी परास्त किया हो, जो कि पुरातन काल के ओरेकल (Oracle, भविष्यवाणी) की दुनिया में भौंकते हैं और हमने ज्योति को बोलते देखा हो। तब हम इसके शासक होंगे और पवित्र रहस्यों के दुश्मनों के विरुद्ध इसका निर्देश कर सकेंगे, जैसा कि नुमा (रोम का एक बादशाह) ने किया। परन्तु पूर्ण पवित्रता के अभाव में और यदि किसी पाशविक इच्छा के क़ाबू में आकर, तूफ़ानी सांसारिक वासनाओं के शिकार होकर, जिसके अधीन हम अब भी निवास करते हैं, यदि इस काम में हम लगें, तो जो अग्नि हम प्रज्ज्वलित करेंगे, वह हमें ही भस्म कर देगी। हम टुलुस होस्टीलीयस (नुमा के बाद रोम का तीसरा बादशाह) की भाँति उस विषय वासनारूपी सर्प के, जिसे कि हम खुला छोड़ देंगे, शिकार हो जायेंगे।

प्रभु को परिभाषित करते हुए, पाइथागोरस, उन्हें जीवंत और ज्योति में लिपटा हुआ परिपूर्ण सत्य बतलाते हैं। उन्होंने 'शब्द' को 'रूप द्वारा व्यक्त संख्या' के रूप में परिभाषित किया है और उसने सभी वस्तुएँ टेट्रक्टिस (Tetractys) अर्थात टेट्रड (Tetrad) यानी चौका से व्युत्पन्न की। उन्होंने ये भी कहा कि परमात्मा सबसे महानतम संगीत है, और उसका स्वभाव स्वरलहरी बताया जाता है।

आगे ये सुनाया जाता है कि पशु पाइथागोरस के आ. ज्ञाकारी थे। एक बार, ओलंपिक खेलों के बीच में, उन्होंने आकाश में उड़ते गरुड़ को नीचे आने का इशारा किया और वह पक्षी गोल चक्कर लगाता, उन के पास जा उतरा और दुबारा विसर्जन का आदेश पाते ही वापस उड़ गया। अपूलिया में एक बड़ा रीछ क़ाबू से बाहर हो गया, तो पाइथागोरस ने उसे क़ाबू करके अपने चरणों में बिठाया और उसे देश छोड़ने का आदेश दिया और वह उसके आदेशानुसार वहाँ से अदृश्य हो गया। जब लोगों ने पूछा कि आपने ये शक्ति किस ज्ञान से प्राप्त की, तो उन्होंने कहा कि ज्योति के विज्ञान द्वारा। वास्तव में सभी जानदार जीव ज्योति के ही अवतार हैं।

भद्देपन के अंधकार से रूप पैदा होते हैं और सुंदरता की भव्यता की ओर शनैः शनैः बढ़ते हैं। रूपों के अनुसार ही उनमें सहज वृत्तियाँ पनपने लगती है और मनुष्य, जो कि उस ज्योति का संस्लेषण है, जबकि पशु आदि उसके विशलेषण माने जा सकते हैं, और इसीलिये मनुष्य उन पर शासन करने के लिये जन्मा है। परन्तु, वास्तव में ऐसा हुआ गया है कि मानव उन पर शासन करने की बजाय, उनका कष्टदाता उत्पीड़क और भक्षक बन गया है। इसी से भयभीत होकर उन्होंने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया है। किसी विशिष्ट इच्छाशक्ति के सम्मुख, जो एक ही समय में दयालु और मार्गदर्शक भी हो, वे बिल्कुल ही पूरी तरह से आकर्षित हो जाते हैं, और कई आधुनिक कृत्य मिलकर हमें इस योग्य बना सकते हैं कि पाइथागोरस द्वारा किये गए चमत्कारों की संभावनाओं को समझ सकें...

'सूक्ष्म ज्योति' धरती की जीवित आत्मा है, जो कि एक भौतिक तथा घातक आत्म शाश्वत है, जिसे अपने उत्पादन और हलचल में संतुलन का नियमों द्वारा नियंत्रित किया जाता है...

...यह ज्योति, जो सभी वस्तुओं के इर्द-गिर्द तथा उनमें व्याप्त रहती है, उन के वज़न को निलम्बित कर सकती है और उन्हें एक शक्तिशाली आकृष्टकारी केन्द्र के इर्द-गिर्द घुमा सकती है।

इस्लाम :

मुस्लिम सूफ़ी इसे 'सुल्तान–उल–अज़कार' (प्रार्थनाओं का बादशाह) कहते हैं। सूफ़ियों के एक अन्य संप्रदाय में इसे 'सौत–ए–सरमदी' (दैवी गीत) कहा जाता है। वे इसे 'कलाम–ए–क़दीम' (पुरातन ध्वनि) और 'कलमा' (शब्द), 'निदाए–आसमानी' (स्वर्ग से उतरती हुई ध्वनि) भी कहते हैं। चौदह तबक [भवन] भी कलमे से बने हैं।

ख़्वाजा हाफ़िज़, जो कि एक महापुरुष हो चुके हैं, कहते हैं :

तुरा ज़ किंगरा–ए–अर्श मीज़नंद सफ़ीर।

न–दांमत कि दरीं दामगह चिह् उफ़्तादस्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.54)

(अर्श, ख़ुदा के घर से एक आवाज़ हरदम आ रही है, परन्तु तुम दुनिया के जंजाल में फ़ुज़ूल फंस कर उसे नहीं सुनते।)

कस न–दानिस्त कि मंज़िल–गहे मअशूक़ कुजास्त,
ईंक़दर हस्त कि बांगे–जरसे मी आयद।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ.200)

(मेरे प्रियतम की मंज़िल कहाँ है, यह कोई नहीं जानता। लेकिन इतना तो ज़रूर है कि वहाँ से घंटे की आवाज़ आ रही है।)

दुबारा फिर,

अपने कानों की गिट्टियों को निकाल लो और उस मोक्षदाता को सुनो, जो कि तुम्हारी ओर आ रही है। अपने आपको सांसारिक पदार्थों से मत जोड़ो, परन्तु जीवन के अमृत से जोड़ो, जो कि ऊपर से बरस रहा है। प्यार की धड़कन, जो कि स्वर्ग में गूंजती है, भक्तों की आत्माओं को आशीर्वाद भेजती है।

— ख़्वाजा हाफ़िज़

जलालुद्दीन रूमी अपनी मसनवी में कहते हैं :

पंबा–ए वसवास बेरूँ कुन ज़ गोश, ता बगोशत आयद अज़ गरदूं ख़रोश।
पस महल्ले–वही गरदद गोशे जां, वही चिह् बुवद गुफ़्तन अज़ हिस्से–निहाँ।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.170)

(संशयवादी मत बनो, बल्कि अपनी सुरत को उस 'शब्द' से जोड़ो, जो कि स्वर्ग से नीचे धरती पर आ रहा है। सुदूर से ही तुम्हारी आत्मा को अनुभव होंगे। ये क्या हैं? अप्रकट प्रभु की झलकें हैं।)

गर बिगोयम शम्मा–ए–जाँ नग़महा,
जानहा सर बर ज़नन्द अज़ दख़्महा।

— मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.212)

(यदि इन मधुर संगीत की तानों का हाल मैं तुझे बतलाऊँ, तो उसे सुन कर मुर्दे भी अपनी क़ब्रों से उठ खड़े हों।)

ब–हफ़्तम चर्ख़ नौबत पंच दारी,
चू ख़ेमा ज़ शश जहत बरकंदा बाशी।

— कुल्लीयात शम्स तब्रेज़ (पृ.405)

(अगर जीव छः चक्रों से अपना डेरा हटा ले और सातवें आसमान पर आ जाये, तो ये पाँच नौबतें उस स्थान पर बजती हुई मिलेंगी।)

दुबारा फिर,

चर्ख़ रा दर ज़ेरे-पा आर ऐ शुजाअ,
बिशनौ अज़ फ़ौके-फ़लक बांगे-समाअ।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 2, पृ.190)

(ऐ बहादुर आत्मा! क्षितिज से ऊपर उठो और सुनो कि कैसा मधुर संगीत सब से ऊँचे आसमानों में से नीचे उतर रहा है।)

हज़रत मुहम्मद साहिब ने कहा कि उन्हें 'प्रभु की आवाज़' वैसे ही सुनाई पड़ी, जैसे कि कोई दूसरी आवाज़ सुनाई पड़ती है।

एक अन्य मुस्लिम भक्त, शाह नियाज़ कहते हैं :

अम-ए-रब्बी अस्त रूह सिर्र ख़ुदास्त,
ज़िक्र बेकाम ओ बेज़बां ऊ रास्त।
यारे-मा हरदम बा तू कलीम,
हैफ़ तू नशनवी कलामे-क़दीम।

– दीवाने-नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(आत्मा [सुरत] ही इच्छा है और प्रभु का रहस्य। इसका ध्यान, बिना जीभ और तालु की मदद के किया जाता है। अफ़सोस है कि तुम शारीरिक बंधन में बहुत फँसे हो और 'प्रभु की पवित्र ध्वनि' नहीं सुनते हो। वह प्रियतम तुम्हारे साथ बातें कर रहा होता है, जबकि अफ़सोस! कि तुम उसके पुरातन 'कलाम' को सुनते ही नहीं।)

और फिर,

हमा आलम पुर हस्त अज आवाज़,
लेक दरहाए गोशे ख़ुद कुन बाज़।
बाज़ करदन हमीं बस अस्त तुरा,
बंद साज़ी रहे-शुनीदन रा।
बिशनवी यक कलामे-ना-मक़्तूअ,
अज़ हदूसो-फ़ना बुवद मरफ़ूअ।

– दीवाने-नियाज़ बरेलवी (पृ.90)

(यदि तुम अपने कान खोल कर सुनो, तो सारे आलम में यह आवाज़ हो रही है। कानों को खोलने का केवल इतना ही मतलब है कि तुम सुनने वाले रास्ते को

बंद कर दो, तब तुम उस अनहद 'कलाम' को सुनोगे, जो प्रलय की सीमा से परे है। हे प्रभु! मुझे वह स्थान दिखाओ, जहाँ से आपकी आवाज़ यानी 'कलमा' निकल कर आ रहा है और जिसमें कोई भी अक्षरी शब्द नहीं है।)

बहा'ई-मत :

फ़ारस (पर्शिया) के रूहानी संत, बहा'उल्लाह की पुस्तक, 'गुप्त शब्द' में से नीचे कुछ उद्धरण लिये जाते हैं :

हे प्रेम के पुत्र? तुम उन भव्य ऊपरी ऊँचाइयों से, और प्रेम के स्वर्गिक वृक्ष से केवल एक क़दम ही दूर हो। एक क़दम आगे बढो और अगले क़दम में तुम अमर मंडल में बढ़कर शाश्वतता के महल में प्रवेश पा जाओ। इसीलिये तुम उसे ध्यान से सुनो, जिसको भव्यता की क़लम द्वारा प्रकट किया गया है।

हाय? लापरवाही का ही ये सार है। यद्यपि उसकी एक ही वाणी से अनेक प्रकार की ज़ुबानें उच्चारण कर रही हैं और एक ही स्वरलहरी से अनेकानेक रहस्य प्रकट हो रहे हैं, फिर भी अफ़सोस? सुनने वाला कोई कान नहीं है और न ही, कोई हृदय उसे समझने वाला।

ओ लापरवाही और कुप्रवृत्ति के बच्चे? अपने आंतरिक कानों को खोलो, ताकि तुम 'प्रभु के शब्द' को सुन सको, जो कि संकट में मददगार और स्वयंभू है।

ऐ मिट्टी की संतान? ...अदृश्य मंडलों से एक रहस्यमयी आवाज़ तुम्हें बुला रही है, उसे सुनो।

ऐ इंसान की संतान? तुम्हीं मेरे दीप हो और तुम्हारे अंदर की मेरी ज्योति है... मैंने तुम्हें अमीर पैदा किया है... और तुम्हारे अंदर ही मैंने अपनी रोशनी का सार तत्व पहले से ही रख छोड़ा है।

ऐ आत्मा के पुत्र? ...अफ़सोस सिर्फ़ एक प्याले के लिये उन्होंने सब से ऊँचे प्रभु के उफनते समुद्र से मुँह मोड़ लिया है। और सब से प्रकाशमय क्षितिज से दूर रह गए।

ऐ मिट्टी की संतान? ...अपनी क़ैद से ऊपर शानदार सैरगाहों में ऊपर तो चढ़ो और अपने नश्वर और प्रेम का अमरपक्षी बनकर पवित्रता के आकाश में उड़ चलो। पिंजरों से निकल कर उस स्वर्ग की तरफ़ उड़ चलो, जिसका कोई एक ठिकाना नहीं है।

ऐ रूह के पुत्र? अपने पिंजरे को फाड़ दो। आत्म-त्याग कर डालो और करुणा की भावना को रूह में भरके स्वर्गिक पवित्रता के मंडल में निवास करो।

ऐ मानव-पुत्र? मेरे स्वर्ग में चढ़ो, ताकि तुम्हें पुनर्मिलन की ख़ुशी मिले और अनश्वरत भव्यता के प्याले से अतुलनीय शराब पियो।

ऐ मेरे सेवक?... यह सदा बहने वाली जीवनधारा की नदी है, जो कृपालु प्रभु की क़लम के स्रोत से निकल कर आ रही है। और जो इसको पीते हैं, वे ख़ुशहाल हैं।

ऐ कामुकता के पुत्र? अपने आपको अमीरी की गंदगी से साफ़ करो और पूरी शांति से ग़रीबी के क्षेत्र में बढ़ो, जिससे कि वैराग्य के स्रोत में से तुम अमर जीवन की शराब पी सको।

ऐ मेरी सेविका के बच्चे? उस कृपालु की ज़ुबान से निकलती दिव्य रहस्य की धारा से तुम पियो...।

संतों की शिक्षाएँ :

सबद बिना स्रुति आँधरी, कहो कहा को जाय।
द्वार न पावै सबद का, फिरि फिरि भटका खाय।।

— कबीर साखी संग्रह, भाग 2 (शब्द का अंग 15, पृ.93)

मनु माइआ महि उरझि रहिओ है बूझै नह कछु गिआना।।
कउनु नामु जग जा कै सिमरै पावै पदु निरबाना।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰9, पृ॰902)

सबदि गुरू भवसागरु तरीऐ इत उत एको जाणै।।
चिहनु वरनु नही छाइआ माइआ नानक सबदु पछाणै।।
— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰944)

सारी स्रष्टि शब्द कै पाछै। नानक शब्दु घटै घटि आछै।।
शब्दै धरती शब्दु अकाशु। शब्दै शब्दु होआ प्रगासु।।
— प्राण–संगली, भाग 2 (पृ॰17)

नाउ नीरु चंगिआईआ सतु परमलु तनि वासु।।
ता मुखु होवै उजला लख दाती इक दाति।।
दूख तिसै पहि आखीअहि सूख जिसै ही पासि।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰16)

आवण जाणु नही मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही।।
नानक राम नामु जपि गुरमुखि धनु सोहागणि सचु सही।।
— आदि ग्रंथ (मलार म॰1, पृ॰1254)

पारि साजनु अपारु प्रीतमु गुर सबद सुरति लंघावए।।
मिलि साधसंगति करहि रलीआ फिरि न पछोतावए।।
— आदि ग्रंथ (तुखारी म॰1, पृ॰1113)

साकत नरि सबद सुरति किउ पाईऐ।।
सबद सुरति बिनु आईऐ जाईऐ।।
नानक गुरमुखि मुकति पराइणु हरि पूरै भागि मिलाइआ।।
— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1042)

उतपति परलउ सबदे होवै।।
सबदे ही फिरि ओपति होवै।।
— आदि ग्रंथ (असटपदीआ माझ म॰3, पृ॰117)

भाग सुलखणा हरि कंतु हमारा राम।।
अनहद बाजित्रा तिसु धुनि दरबारा राम।।
— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰846)

नाम के धारे खंड ब्रह्मंड।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰284)

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी।।
ब्रह्मसुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा।।

— रामचरितमानस् (1:21-1)

सबदहि ताला सबदहि कुंजी, सबद की लगी है जँजिरिया।।
सबद ओढ़ना सबद बिछौना, सबद की चटक चुनरिया।।
सबद सरूपी स्वामी आप बिराजैं, सीस चरन में धरिया।।

— दूलनदास साहिब

जब से अनहद घोर सुनी।
इंद्री थकित गलित मन हूवा आसा सकल भुनी।।
घूमित नैन सिथिल भइ काया अमल जु सुरत सनी।
रोम रोम आनन्द उपज करि आलस सहज भनी।।
मतवारे ज्यों शब्द समाये अन्तर भींज कनी।
करम भरम के बन्धन छूटे दुबिधा बिपति हनी।।

— चरनदास जी की बानी, भाग 2 (शब्द 11, पृ.6)

शब्द कहा सब संतन सार। शब्द बिना कैसे निरवार।।
शब्दहि मछली शब्द नीर। शब्द बखानें सत्त कबीर।।
शब्द बतावें नानक पीर। शब्द लखावें तुलसी धीर।।

— सार बचन, पद्य (बचन 9, शब्द 3, पृ॰89)

अध्याय

: **3** :

नाम – एक अध्ययन

'शब्द' समस्त सृष्टि में बारंबार गूँजता रहता है। ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ यह विद्यमान न हो। मानव–शरीर के जीवित हरि–मंदिर में यही धुनकार मार रहा है।

'नाम' की दौलत अक्षय और असमाप्य है :

'नाम' की दौलत टिकाऊ और अनंत 'नाम' का ख़ज़ाना पूर्णतयाः सुरक्षित और सदैव एक समान रहता है।

एको निहचल नाम धनु होरु धनु आवै जाइ।।
इसु धन कउ तसकरु जोहि न सकई ना ओचका लै जाइ।।

– आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म॰3, पृ॰511)

धरती की दौलतों को जमा मत करो, जिन्हें कीड़े और ज़ंग बरबाद कर देते हैं और जहाँ चोर सेंध मार कर इसको चोरी कर ले जाते हैं। परन्तु स्वर्ग की दौलतों को ही जमा करो, जिन्हें कीड़ें और ज़ंग बरबाद नहीं कर सकते और जहाँ चोर सेंध मार कर इसको चोरी कर ले जा नहीं सकते। क्योंकि जहाँ तुम्हारी दौलत होगी, वहीं तुम्हारा दिल भी होगा।

– पवित्र बाइबिल (मत्ती 6:19-21)

सो धनु वखरु नामु रिदै हमारै।।
जिसु तू देहि तिसै निसतारै।।
न इहु धनु जलै न तसकरु लै जाइ।।
न इहु धनु डूबै न इसु धन कउ मिलै सजाइ।।

– आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰991)

'नाम' के गुण :

'नाम' का स्रोत (झरना) शाश्वत और सदा ही भरपूर रहता है। यह संत–सत्गुरु (जो सत्य में स्थित है) में से झरता रहता है और किसी गुरुमुख (जो संपूर्णरूप से गुरु की शिक्षाओं को धारण करता है) में प्रकट होता है। जो इसका अनुभव करता और अपने अंदर उसका अनुभव करता है, वह वास्तव में ही वरप्राप्त हो जाता है।

हम घरि नामु खजाना सदा है भगति भरे भंडारा।।
सतगुरु दाता जीअ का सद जीवै देवणहारा।।

— आदि ग्रंथ (वडहंस की वार म॰4, पृ॰593)

नामु अखुटु निधानु है गुरमुखि मनि वसिआ।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰787)

अखुटु नाम धनु कदे निखुटै नाही किनै न कीमति होइ।।
नाम धनि मुख उजले होए हरि पाइआ सचु सोइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰3, पृ॰600)

जो जल मैं पिलाता हूँ, जो कोई उसे पियेगा, कभी प्यासा नहीं रहेगा। बल्कि जो पानी मैं उसे दूंगा, वह उसके अंदर जाकर पानी का कुआँ ही बन जायेगा, जिससे शाश्वत ज़िंदगी की धारा सदा फूटती रहेगी।)

— पवित्र बाइबिल (यूहन्ना 4:14)

'नाम' की दौलत वास्तव में ही महान है और सर्वत्र उसकी धुनकारें हिलोरें मार रहीं हैं।

सचु वखरु धनु नामु है घटि घटि गहिर गंभीरु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰22)

'नाम' ही हुक्म और शब्द है :

हुकमु मंने सो जनु परवाणु।।
गुर कै सबदि नामि नीसाणु।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰3, पृ॰1175)

'नाम' गुरुमुख शिष्यों की पैतृक संपत्ति है। गुरु ही ख़ज़ाना है और शिष्य उस दौलत का व्यापारी है।

खरचु खजाना नाम धनु इआ भगतन की रासि।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बावन अखरी, म॰5, पृ॰253)

धनुं धंनु से साह है जि नामि करहि वापारु।।
वणजारे सिख आवदे सबदि लघावणहारु।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰313)

प्रभु वास्तव में 'नाम' का बादशाह है।

रतन पदारथ हरि नामु तुमारा जीउ।।
तूं सचा साहु भगतु वणजारा जीउ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी माझ म॰5, पृ॰217)

शरीरधारी आत्माओं के लिये 'नाम' सबसे बड़ी दिलासा है, 'नाम' ही केवलमात्र सहारा है। शिष्यों–भक्तों को वह मित्र बनके सहायता करता है और 'नाम' के ज़रिये उन्हें एकाग्र मन की भक्ति प्राप्त होती है।

जन नानक नामु अधारु टेक है बिनु नावै अवरु न कोइ जीउ।।
जगु उपजै बिनसै बिनसि बिनासै लगि गुरमुखि असथिरु होइ जीउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰447)

प्रभ जी को नामु मनहि साधारै।।
जीअ प्रान सूख इसु मन कउ बरतनि एह हमारै।।
नामु जाति नामु मेरी पति है नामु मेरै परवारै।।
नामु सखाई सदा मेरै संगि हरि नामु मो कउ निसतारै।

— आदि ग्रंथ (टोडी म॰5, पृ॰713)

साचु नामु अधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ।।
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इछा सभि पुजाईआ।।
सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ।।
कहै नानकु सुणहु संतहु सबदि धरहु पिआरो।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰917)

तेरा एकु नामु तारे संसारु।।
मै एहा आस एहो आधारु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰24)

'नाम' की आध्यात्मिक साधना :

आध्यात्मिक साधना का सही और परिशुद्ध तरीक़ा नामदान के समय संत–सत्गुरु द्वारा वर्णित किया जाता है। 'नाम' का विज्ञान सृष्टि के प्रारंभ से ही चला आया है और सबसे अधिक क़ुदरती भी है। इसमें कोई इंसानी मध्यस्थता नहीं है। यह 'अखंड कीर्तन' है या स्वर्गिक संगीत है, जो कि संत–सत्गुरु से भेंट के तौर पर मुफ़्त मिलती है– ठीक इसी तरह से, जैसे कि पानी, हवा, धूप आदि इसमें जीवन का स्पंदन एक से दूसरे तक पहुँचाया जाता है, और यह सत्गुरु की कृपा से प्राप्त होता है। नामदान (दीक्षा) के समय, वह जिस्म–जिस्मानियत से ऊपर आने का थोड़ा अनुभव देता है, जिससे कि अंदर की आँख और कान खुल जाते हैं, जिससे कि प्रभु की 'ज्योति' को देखा और अंतर की 'श्रुति' को सुना जा सके।

'नाम' की साधना सबसे सहज है और सबसे द्रुतगामी, क्योंकि यह सबसे ज़्यादा कुदरती है। इसे विचार की ज़ुबान से किया जाता है। इसके रास्ते में धामृक विश्वास और राष्ट्रीय भावनाएँ नहीं आतीं। यह सहज योग है, और रंग, जाति, धर्म, लिंग, पेशे, वर्ण, आयु आदि के भेद होते हुए भी, सभी कोई इसका अभ्यास और लाभ उठा सकते हैं। हमेशा तरोताज़ा वाली पुरानी शराब की भाँति है, जो कि नई बोतलों में बंद करके प्रस्तुत की जाती है। इस विज्ञान के ज़माने में इस को अन्य विज्ञानों की भांति उस युग की ज़रूरतों के अनुकूल ही पेश किया जाता है, जिसका वैज्ञानिक परीक्षण किया जा सकता है, गणितज्ञ सुनिश्चितता के साथ।

सचु पुराणा ना थीऐ नामु न मैला होइ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1248)

यह इतना स्वाभाविक और आसान है कि कोई भी व्यक्ति इस दिनचर्या के तौर पर अपना सकता है। इसमें कोई पेचीदगी और रहस्यमय अभ्यास नहीं हैं तथा इस रास्ते पर कोई भी व्यक्ति बड़ी सुरक्षित ढंग से सहजता और आराम के साथ आगे चल सकता है। यह प्रभु की ओर जाने वाला बड़ा और सीधा राजमार्ग है। इसमें ज़रा सी मेहनत से ही साधक बड़ी फ़सल उगा सकता है। जो उपलब्धियाँ पुरातन ऋषियों ने सैकड़ों वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद प्राप्त कीं, उन्हीं को अब आसानी से प्रतिदिन की सच्ची लगन से, बग़ैर किसी शारीरिक कष्ट या तपस्या के, किया जा सकता है।

शुरू में साधक को नियत समय पर प्रतिदिन नियमित एकांत स्थान पर अभ्यास करना पड़ता है। परन्तु, ज्यों ही जिज्ञासु का आंतरिक अनुभव नियमित रूप धारण कर लेता है, उस हालत में समय और स्थान की सभी पाबंदियाँ ख़त्म हो जाती हैं और वह उस 'दिव्य स्वरलहरी' के साथ दिन–भर, बिना परिश्रम के, अधिक से अधिक कठोर काम–काज के बीच भी जुड़ा ही रहता है।

सोये बैठे खड़े उताने।। कहे कबीर हम वही टिकाने।।

– संत कबीर

'ध्वन्यात्मक' अथवा 'आंतरिक शब्द धारा' के सदा ही सुनते रहने से, सुरत उसमें सदा तल्लीन हुई रहती है। तत्पश्चात् संसार में उसके सभी कार्य मा'नो उसकी अनंत आंतरिक साधना का अंग ही बन जाते हैं। प्रभु की ज्योति और जीवनधारा के संपर्क से व्यक्ति उस की अंतर्यामी मौजूदगी सदा ही अनुभव करता रहता है।

दक्षिणेश्वर के संत, परमहंस रामकृष्ण से जब नरेन ने (जो बाद में स्वामी विवेकानंद कहलाये) यह पूछा कि क्या आप परमात्मा को देख सकते हैं, तो बिना किसी हिचक के उन्होंने उत्तर दिया, "हाँ बच्चा, मैं उसे देखता हूँ, जैसे कि मैं तुम्हें देख रहा हूँ।" गुरु अर्जन कहते हैं,

नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।।

– आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰397)

एक बार प्रभु की भव्यता को आमने–सामने आंतरिक तौर पर देखने के बाद, व्यक्ति उसकी मौजूदगी का अनुभव करने लगता है। उस असीम प्रभु के अनुकूल होकर, जो कुछ भी व्यक्ति करता है, वह उसकी उपासना का हिस्सा बन जाता है। इस हालत के बारे में कबीर साहिब बड़ी ख़ूबसूरती से बयान करते हैं :

संतों सहज समाधि भली।।
जब से दया भई सतगुर की सुरत न भूल चली।।
जहाँ जहाँ जाइ सोई परकरमा जा कुछ करे सो पूजा।।
घर बाहिर सब इकसम भासे भाव मिटे सब दूजा।।
शबद अधर से सुने निरंतर सकल बासना त्यागे।।

जागत सोवत ऊठत बैठत गहिरी तारी लागे।।
आँख न मूँदूं कान न रूँदूं काया कष्ट न धारूँ।।
उघड़े नैन निज साहिब देखूँ सुन्दर रूप निहारूँ।।
कहें कबीर इह उत्तम रहिनी परगट सो कहि गाई।।
सुख दुख परे परम पद दरसे सोई सदा सुखदाई।।

इस संदर्भ में गुरु अर्जन कहते हैं :

बेद कतेब संसार हभा हूं बाहरा।।
नानक का पातिसाहु दिसै जाहरा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰397)

'नाम' कैसे पाया जा सकता है? :

(क) परमात्मा की पवित्र और सहज कृपा से :

नानक नदरी पाईऐ सचु नामु गुणतासु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰26)

ता कै हिरदै बसिओ नामु।। जा कउ सुआमी कीनो दानु।।

— आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1298)

नावै जेवडु होरु धनु नाही कोइ।।
जिस नो बखसे साचा सोइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰364)

(ख) परमात्मा के हुक्म से :

धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरि कै लागे।।
कहै नानकु तह सुखु होआ तितु घरि अनहद वाजे।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰917)

जतु सतु संजमु नामु है विणु नावै निरमलु न होइ।।
पूरै भागि नामु मनि वसै सबदि मिलावा होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰33)

नानका जिन नामु मिलिआ करमु होआ धुरि कदे।।

— आदि ग्रंथ (वंडहस म॰1, पृ॰566)

जिन्ह धुरि लिखिआ लेखु तिनी नामु कमाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰369)

(ग) संत-सत्गुरु की कृपा से ही 'नाम' से ता'ल्लुक मिलता है या ऐसे से, जो कि नाम में तल्लीन हो :

नामै ही ते सभु किछु होआ बिनु सतिगुर नामु न जापै।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰3, पृ॰753)

जो तिनि कीआ सो सचु थीआ।।
अंमृत नामु सतिगुरि दीआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰352)

बिनु सतिगुर दाता को नही जो हरि नामु देइ आधारु।।

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म॰3, पृ॰1417)

ऐसा नामु जपहु मन रंगि।।
नानक पाईऐ साध कै संगि।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰264)

मोहि निरगुण कउ प्रभि कीनी दइआ।।
साधसंगि नानक नामु लइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰183)

जीवन, जीवन से ही आता है। एक जीवित सत्गुरु के अलावा अन्य कोई भी दूसरों को जीवन का स्पंदन का प्रदान नहीं देकर सकता। साधु–संतों ने हमेशा ये ज़ोर देकर कहा है कि जिसके द्वारा भी संभव हो, अंतर में 'नाम' का अनुभव प्रकट प्रत्यक्ष होना चाहिये और उसके बाद, समर्थ सत्गुरु का दिया हुआ अनुभव आगे अभ्यास से और विकसित करना चाहिये।

जहां नामु मिले तह जाउ।। गुर परसादी करम कमाउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰414)

एक मुस्लिम सूफ़ी महात्मा भी इसी बात को कहते हैं :

मर्दे–हज्जी हमरही हाजी तलब,
ख़्वाहे हिन्दू ख़्वाह तुर्क ओ या अरब।

– मसनवी मौलाना रूमी (दफ़्तर 1, पृ.304)

(यदि तुम हज के लिये [मक्का की तीर्थयात्रा] जा ही रहे हो, तो एक अनुभवी हाजी [जो व्यक्ति पहले मक्का की यात्रा कर चुका है] को साथ लेकर उसे अपना मार्गदर्शक बना लो, बेशक़ वह हिंदू, तुर्क या अरब क्यों न हो।)

दिव्य–सूत्र का अनुभव पाने के लिये संत–सत्गुरु से मिलना और उससे दीक्षित होना परम आवश्यक है, क्योंकि वही उस के सिद्धांत को वर्णित कर सकता है और उस आंतरिक सच्चाई का हम सभी को अनुभव सामने बिठाकर दे सकता है। सत्गुरु के आवेशित 'शब्द', उनका आकर्षक प्रभाव और उनमें से निकलती हुई जीवनदायिनी किरणें जिस्म–जिस्मानियत से सुरत की धाराओं को निकालने में तत्काल मददगार होती हैं, क्योंकि जब तक रूह, जो कि नीचे बाहिर्मुखी इंद्रियों के द्वारा संसार में जा रही होती है, जब तक उसे दो भौंवों के बीच में इकट्ठा न किया जाए, जो इसका ठिकाना है, तब तक ये अपने आपका अनुभव नहीं कर सकती, यह आत्म–विश्लेषण का क्रियात्मक अनुभव या आंतरिक मनुष्य (आत्मा या उच्चतर आपा) को बाहरी मनुष्य (जिस्म–जिस्मानियत का निम्नतर आपा) से प्रथक् करने का अनुभव है।

युगों पुरानी आदतों के बल से हम बदक़िस्मती से बाहरी मनुष्य से ही चिपटे रहते हैं और हर समय बाहरी दुनिया में ही लम्पट रहते हैं, और उसी के साथ हमने अपने आप की पहचान बना रखी है। जैसा कि एमर्सन कहते हैं, "अंदर दस्तक दो," अंतर्मुख होने या लौटने का या जैसे कि ईसा मसीह कहते हैं, एक छोटे से बच्चे के रूप में परिवर्तित हो जाने का एक नियमित रास्ता है। और इस कठिन समस्या को हल करने के लिये एक अनुभवी महापुरुष की आवश्यकता है, जो हमारी आत्मा को मन और बाहर की ओर जाती हुई मन इंद्रियों की क़ैद से कुछ समय के लिये आज़ाद कर सके। दूसरे लफ़्ज़ों में ये सुरत का मन से परे का, इंद्रियातीत अनुभव है, जो एक संत–सत्गुरु के द्वारा सफलतापूर्वक दिया जा सकता है। क्योंकि वे न तो बोल सकतीं हैं, न ही वे उनके असली महत्त्व को वर्णित कर सकतीं हैं, इस प्रयोग को धर्मग्रंथों तथा पावन पुस्तकों को पढ़ कर नहीं किया जा सकता। न ही वे आत्मा की मार्गदर्शक हो सकतीं हैं, जब यह भौतिक मंडल को पार कर उच्चतर मंडलों में प्रवास करती है, जिनमें से अधिकतर सूक्ष्म संकटों और कठिनाइयों से भरे होते हैं, जिनमें से सत्गुरु अपने दिव्य

ज्यातिर्मयस्वरूप में रक्षा कर सकते हैं और आत्मा के सुरक्षित तौर से एक रूहानी मंडल से अगले में ले जा सकते हैं।

जो व्यक्ति बिना किसी समर्थ सत्गुरु के ऊपरी मंडलों में चढ़ाई करने का यत्न करते हैं, उन्हें संभव है कि मन अथवा काल की नकारात्मक शक्ति धोखा दे दे और पथ भ्रष्ट कर दे।'सुरत–शब्द योग' में सत्गुरु की महत्ता के बारे में अत्यधिक बल देना संभव ही नहीं है। वह दरअसल, शुरू से आख़िर तक, जीवन में और उसे बाद भी, जो कि दृश्य का अदृश्य तौर पर, धरती के अंत तक छोर के परे भी, धर्मराज की कचहरी में भी, और उससे परे भी, एक केन्द्रीय व्यक्तित्व है।

'नाम' गुरूमुख की जागीर, उसकी पैतृक संपत्ति है :

रसना नामु सभु कोई कहै। सतिगुरु सेवे ता नामु लहै।।

— आदि ग्रंथ (मलार म॰3, पृ॰1262)

रूहानियत को न तो ख़रीदा जा सकता है और न ही उसे सिखाया–पढ़ाया जा सकता है; परन्तु उसे किसी छूत की बीमारी की तरह से ही उससे पकड़ा जा सकता है, जिस किसी को रूहानियत का संक्रमण हो चुका है, जिसे कि 'सत्गुरु', 'साधु' या 'संत' कहा जाता है। आध्यात्मिकता में जो निपुण है, वह अपनी कृपा और दया से किसी को भी 'नाम' का रूहानी अनुभव दे सकता है, जो अब हम में से प्रत्येक के भीतर दबा पड़ा है। हमें उस अनुभव को पाने के लिये ग्राह्यता का अभ्यास विकसित करना ही होगा और उसके बाद, प्रभु की कृपा स्वयं ही प्रवाहित होनी शुरू हो जायेगी। 'नाम' की दौलत एक गुरुमुख के पास आती है, न कि किसी मनमुख के पास, जो सदैव ही मन–इंद्रियों के स्तर पर भटकता रहता है।

घर ही सउदा पाईऐ अंतरि सभ वथु होइ।।
खिनु खिनु नामु समालीऐ गुरमुखि पावै कोइ।।
नामु निधानु अखुटु है वडभागि परापति होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰29)

नाम तुलि कछु अवरु न होइ।।
नानक गुरमुखि नामु पावै जनु कोइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰265)

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै।
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै।
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

बंधन तोड़ै मुकति होइ सचे रहै समाइ।।
इसु जग महि नामु अलभु है गुरमुखि वसै मनि आइ।।
नानक जो गुरु सेवहि आपणा हउ तिन बलिहारै जाउ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग की वार म॰3, पृ॰644)

मनमुख नामु न जाणनी विणु नावै पति जाइ।।
सबदै सादु न आइओ लागे दूजै भाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰28)

'नाम' के दर्शन (Philosophy) को शब्दों में बयान नहीं किया जा सकता। 'नाम' की चर्चा करना ही केवलमात्र लाभकारी नहीं, क्योंकि 'नाम' तो केवल आंतरिक अनुभव से प्राप्त किया जा सकता है।

यदि किसी प्रोफ़ेसर से ये कहा जाये कि वह नक़द पैसों के बदले में एम.ए. की डिग्री दे दे, तो वह इन्कार कर देगा। हमें इसे पाने के लिये परिश्रम करके इसे योग्यता के आधार पर हासिल करना होगा। हम में से प्रत्येक के अंदर प्रभु की शक्ति मौजूद है, परन्तु किसी संत–सत्गुरु की कृपा और रूहानी साधना के द्वारा इसका अनुभव पाया और विकसित किया जा सकता है। संसार के सभी सृष्टिगत प्राणी (जैसे कि अंडज, जेरज, स्वेदज, उद्भिज्ज) तथा सभी प्रकार के जप (जैसे कि बैखरी, मध्यमा, पश्यंती, परा), सभी 'नाम' से बहुत परे हैं और अपने आप में मात्र एक महान भ्रम हैं।

तेरीआ खाणी तेरीआ बाणी।।
बिनु नावै सभ भरमि भुलाणी।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰116)

'नाम' से ता'ल्लुक किसी संत–सत्गुरु की उपासना द्वारा ही संभव है, उस के बिना नहीं।

परमात्मा की बादशाहत (मन–इंद्रियों के स्तर पर) अवलोकन से नहीं मिलती। परमात्मा की बादशाहत तो तुम्हारे

अंदर पहले से ही मौजूद है।

— पवित्र बाइबिल (लूका 17:20-21)

ईसा मसीह ने अपने अनुयायियों को ये सलाह दी कि वे केवल 'नाम' के उपदेश सुनते ही न रह जायें, परन्तु उस का अनुभव पायें।

मानव जीवन अपने आप में एक बड़ी नियामत है, क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति इसकी संरचना में आकाश तत्व रखता है, इसका विवेक प्रबल होता है, जिसके कारण ये सत्–असत् का विवेक रखता है, सत् को असत् से पृथक् करने और जीवन की अनिवार्य तथा अ–अनिवार्य चीज़ों का मूल्यांकन कर सकता है। इस रास्ते में दो चीज़ें एकदम ज़रूरी हैं : एक सच्चा मार्गदर्शक या अनुभवी सहयात्री, और 'नाम' का अभ्यास या आध्यात्मिक साधना, जैसा कि मार्गदर्शक सिखाता है। इस रास्ते में ऐसा व्यक्ति, जो कि दुनिया और दुनियादारी में फँसा है, इस क्षेत्र में तरक़्क़ी हासिल नहीं कर सकता। हमारे अंदर जो रूहानी सूत्र है, वही हमारी ज़िन्दगी की भी ज़िन्दगी है। फिर भी इसका ता'ल्लुक किसी संत–सत्गुरु की कृपा से ही संभव है, और उस प्रभुत्व के अनुभव के बिना, सभी जीवात्माएँ, सभी साधनाएँ या भ्रामक कर्मकांड किसी भी काम के नहीं हैं और परिणाम रहित हैं।

होरु कूड़ु पड़णा कूड़ु बोलणा माइआ नालि पिआरु।।
नानक विणु नावे को थिरु नहीं पड़ि पड़ि होइ खुआरु।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग की वार म॰3, पृ॰84)

---

1. सिद्ध : वह इंसान, जिसको सिद्धियाँ मिली हों; पीर : रूहानी मुसलमान या रूहानी गुरु; सुर : देवते; नाथ : योगी— योग विद्या में माहिर।

2. धौल : बैल, कथाओं में वर्णन किया हुआ है कि यह बैल पृथ्वी और आसमान को सहारा दे रहा है।

3. शास्त्र : हिन्दुओं के सैद्धान्तिक ग्रन्थ; स्मृतियाँ : हिन्दुओं के पुरातन ग्रन्थ; वेद : इंसानी विचारों की पुरातन किताबें।

4.अड़सठ : साधारण तौर पर दोनों लफ़्ज़ों का मतलब 'आठ' और 'साठ' यानी अड़सठ है। गुरु नानक साहिब हिन्दू धर्म के विश्वास का दोबारा प्रयोग करते हैं कि अड़सठ तीर्थों पर स्नान से सब पाप कर्म धोये जाते है। (देखें सात पौड़ी के नीचे लिखे स्थान पर)।

5. सहज : यह लफ़्ज़ उस अवस्था को बताता है जब कि स्थूल, सूक्ष्म के कारन संसारों के उपद्रव (मुश्किलें), सब जादू डालने वाली शक्तियों से ऊपर उठकर महान जीवन के असूलों को अन्तर में देखते हैं।

'नाम' का अनुभव प्रभु की अनुकम्पा या किसी जीवित सत्गुरु की कृपा के बिना संभव नहीं हो सकता है, जिसकी मदद और निर्देशन के बिना आत्मा का यह आंतरिक अनुभव बिल्कुल ही असंभव है।

गुर सेवा ते हरि नामु पाइआ बिनु सतिगुर कोइ न पावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰116)

फिर भी, एक असली सत्गुरु से मिलना, जो कि 'सत्' का अनुभव दे सकता हो, नितांत कठिन है।

'नाम' के गुण :

संसार की पवित्र धामृक पुस्तकें हमें 'नाम' या 'वर्ड' के अनगिनत गुणों के बारे में बतलाती हैं। ईसाई धर्मग्रंथ के गॉस्पल या सुसमाचारों में 'नाम' को 'जीवन की रोटी' और 'जीवन का पानी' कह कर बयान किया है, क्योंकि केवल यही आत्मा की भूख प्यार को मिटाने में समर्थ है।

जो प्यासा है, वो आये, और जो कोई इसे चाहे, खुल कर 'ज़िन्दगी का पानी' ले ले।

– पवित्र बाइबिल (रहस्योद्घाटन 22:17)

एक स्वस्थ मन एक स्वस्थ शरीर में यह एक प्रसिद्ध लोकोक्ति है और दोनों ही आत्मा से अपनी स्वास्थ्य ख़ुराक व प्राप्त करते हैं; और यदि आत्मा को पर्याप्त मात्रा में ख़ुराक़ न मिले, तो सम्पूर्ण प्रणाली को— शारीरिक और मानसिक, लकवा मार जायेगा। आत्मा एक चेतन इकाई है, और इसीलिये, इसको तसल्ली से प्रेम, जीवन और ज्योति पर पलना है, जो कि महाचेतनता के तीन अनिवार्यिक तत्व हैं।

(क) 'नाम' सभी बीमारियों के लिये रामबाण, दवा है :

अधिभौतिक या जिस्मानी व्यधियाँ— जैसे कि रोग, बीमारियाँ, बुढ़ापा आदि; आधिदैविक या ऐसी बीमारियाँ, जो अपने आप ही आ जाती हैं— जैसे कि दुर्घटनाएँ, तूफ़ान, भूचाल आदि, जिन पर कि किसी व्यक्ति का कोई क़ाबू नहीं होता, और आध्यात्मिक या मानसिक बीमारियों— जैसे कि इच्छाएँ, संसार के बारे प्रबल कल्पनाएँ में, क्रोध, लोभ और मोह आदि, के लिए।

सरब रोग का अउखदु नामु।।
कलिआण रूप मंगल गुण गाम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰274)

आगे फिर, 'नाम' इस लोक में और परलोक में सच्चे मार्गदर्शक की तरह मदद करता है।

ऐथै ओथै निबही नालि।। विणु नावै होरि करम न भालि।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰355)

जिह मारगि इहु जात इकेला।।
तह हरि नामु संगि होत सुहेला।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰264)

रसना जपीऐ एकु नाम।।
ईहा सुखु आनंदु घना आगै जीअ कै संगि काम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰211)

(ख) 'नाम' की शब्द-धुनि सुनने के लाभ :

गुरु नानक ने जपुजी में आठवें से ग्यारहवें पदों में (जो कि सिक्खों की दैनिक प्रार्थना की पुस्तक है) 'नाम' के सुनने से तथा ग्रहण करने से हुए अनेक लाभों को गिनाया है :

सुणिऐ सिध पीर सुरि नाथ[1]।। सुणिऐ धरति धवल[2] आकास।।
सुणिऐ दीप लोअ पाताल।। सुणिऐ पोहि न सकै कालु।।
नानक भगता सदा विगासु।। सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 8, पृ॰2)

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु।। सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु।।
सुणिऐ जोग जुगति तनि भेद।। सुणीऐ सासत सिमृति वेद[3]।।
नानक भगता सदा विगासु।। सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 9, पृ॰2)

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु। सुणिऐ अठसठि[4] का इसनानु।
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु। सुणिऐ लागै सहजि[5] धिआनु।
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 10, पृ॰3)

सुणिऐ सरा गुणा के गाह।। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह।।
सुणिऐ अंधे पावहि राहु।। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु।।
नानकु भगता सदा विगासु।। सुणिऐ दूख पाप का नासु।।

— आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 11, पृ॰3)

"सुनने" से अथवा "संबंध जोड़ने" से गुरु नानक का आशय 'नाम' के अनुभव से था और अन्य कुछ नहीं, जैसा कि गुरुवाणी से स्पष्ट होगा :

नाइ सुणिऐ मनु रहसीऐ नामे सांति आई।।
नाइ सुणिऐ मनु तृपतीऐ सभ दुख गवाई।।
नाइ सुणिऐ नाउ ऊपजै नामे वडिआई।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1239)

नाइ सुणिऐ सभ सिधि है रिधि पिछै आवै।।
नाइ सुणिऐ नउ निधि मिलै मन चिंदिआ पावै।।
नाइ सुणिऐ संतोखु होइ कवला चरन धिआवै।।
नाइ सुणिऐ सहजु ऊपजै सहजे सुखु पावै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

नाइ सुणिऐ सुचि संजमो जमु नेड़ि न आवै।।
नाइ सुणिऐ घटि चानणा आन्हेरु गवावै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै।।
नाइ सुणिऐ पाप कटीअहि निरमल सचु पावै।।
नानक नाइ सुणिऐ मुख उजले नाउ गुरमुखि धिआवै।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1240)

'शब्द' को सुनकर जब व्यक्ति पूरी चेतना में उभार आता है, तो वह दिव्य–संकल्प को समझने लगता है और अपने जीवन को उसी की योजना अनुसार ढालने लगता है। इसके बाद, उसकी अपनी कोई इच्छा ही नहीं रह जाती, जो प्रभु की मर्ज़ी से अलग हो। वह सृष्टि–क्रम को काम करते स्पष्ट देखता है, जो प्रभु की योजना के अनुसार ही होती है; और वह स्वयं भी उसकी केन्द्रीय ध्रुव की तरह होता है, जिसके इर्द–गिर्द समस्त जीवनचक्र घूमता रहता है। इस अवस्था के बारे में गुरु नानक हमें जप जी साहिब में बतलाते हैं :

मंने की गति कही न जाइ।। जे को कहै पिछै पछुताइ।।
कागदि कलम न लिखणहारु।। मंने का बहि करनि वीचारु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 12, पृ॰3)

मंनै सुरति होवै मनि बुधि।। मंनै सगल भवण की सुधि।।
मंनै मुहि चोटा ना खाइ।। मंनै जम कै साथि न जाइ।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 13, पृ॰3)

मंनै मारगि ठाक न पाइ।। मंनै पति सिउ परगटु जाइ।।
मंनै मगु न चलै पंथु।। मंनै धरम सेती सनबंधु।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 14, पृ॰3)

मंनै पावहि मोखु दुआरु।। मंनै परवारै साधारु।।
मंनै तरै तारे गुरु सिख।। मंनै नानक भवहि न भिख।।
ऐसा नामु निरंजनु होइ।। जे को मंनि जाणै मनि कोइ।।

– आदि ग्रंथ (जप जी पौड़ी 15, पृ॰3)

जिस हालत में ऐसे लोग रहते हैं, उसे मन और बुद्धि को लफ़्ज़ों में बयान नहीं किया जा सकता। प्रभु सत्ता के सम्पर्क से व्यक्ति उस दिव्य योजना प्रभु के हुक्म या भाणे की कार्यशैली का ज्ञाता बन जाता है। उस अवस्था से गुज़रने के बाद, वह निर्लिप्त हो जाता है, और मन और उसे प्रभावित नहीं कर सकता, और मरने के समय, उसकी आत्मा शरीर को ऐसे आराम से छोड़ती है, जैसे वह रोज़ाना अभ्यास के समय, जिसका वह आजीवन अभ्यास करता रहा होता है; और गुरु का नूरी स्वरूप–दिव्यज्योति स्वरूप उसका संरक्षण करता उसकी आत्मा को ऊपर के मंडलों में ले जाता है।

आत्मिक मंडलों में उत्थान के दौरान कोई भी अवरोध या बाधाएँ नहीं आतीं। उस पर 'नाम' का जादू एक "खुल जा सिमसिम" की भाँति काम करता है, जिससे वह इच्छानुसार किसी भी आत्मिक मंडल पर प्रवास कर सकता है।

सिक्ख धर्मग्रंथ हमें बतलाते हैं :

नाइ मंनिऐ कुलु उधरै सभु कुटंबु सबाइआ।।
नाइ मंनिऐ संगति उधरै जिन रिदै वसाइआ।।
नाइ मंनिऐ सुणि उधरे जिन रसन रसाइआ।।
नाइ मंनिऐ दुखु भुख गई जिन नामि चितु लाइआ।।
नानक नामु तिनी सालाहिआ जिन गुरू मिलाइआ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1241)

नाइ मंनिऐ दुरमति गई मति परगटी आइआ।।
नाउ मंनिऐ हउमै गई सभि रोग गवाइआ।।
नाइ मंनिऐ नामु ऊपजै सहजे सुखु पाइआ।।
नाइ मंनिऐ सांति ऊपजै हरि मंनि वसाइआ।।
नानक नामु रतंनु है गुरमुखि हरि धिआइआ।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1242)

नाइ मंनिऐ सुरति ऊपजै नामे मति होई।।
नाइ मंनिऐ गुण उचरै नामे सुखि सोई।।
नाइ मंनिऐ भ्रमु कटीऐ फिरि दुखु न होई।।
नाइ मंनिऐ सालाहीऐ पापाँ मति धोई।।
नानक पूरे गुर ते नाउ मंनीऐ जिन देवै सोई।।

— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1242)

(ग) 'नाम' के अभ्यास से युगों की अज्ञान-निद्रा से जाग जाता है और आत्म-ज्ञान और प्रभु-अनुभव को पा जाता है :

गुर परसादि नामि मनु लागा।।
जनम जनम का सोइआ जागा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰184)

नाइ सुणिऐ आपु बुझीऐ लाहा नाउ पावै।।

— आदि ग्रंथ (सांरग की वार म॰4, पृ॰1240)

(घ) 'नाम' में विलीन हो जाने से, अंततः आत्मा, परमात्मा में मिल जाती है :

उसके द्वारा वे दोनों अटूट बंधन में बंध जाते हैं और आत्मा इस निकटतम संबंध को हर समय महसूस करती रहती है। वह स्वयं तो सदा

की मुक्ति पा ही जाता है, साथ ही साथ, वे भी, जिन्हें वह 'नाम' का वरदान देता है।

नव निधि नामु निधानु रिधि सिधि ता की दासी।।
सहज सरोवरु मिलिओ पुरखु भेटिओ अबिनासी।।
— आदि ग्रंथ (सवईए म॰4, पृ॰1397)

अनदिनु नामे रतिआ जोती जोति समाइ।।
जोती हू प्रभु जापदा बिनु सतगुर बूझ न पाइ।।
— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰3, पृ॰35)

जिना अंदरि नामु निधानु हरि तिन के काज दयि आदे रासि।।
तिन चूकी मुहताजी लोकन की हरि प्रभु अंगु करि बैठा पासि।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी वार म॰4, पृ॰305)

(च) 'नाम' से ज्योतिर्मयता और सर्वज्ञान मिलता है :

'नाम' से सकल सृष्टि की सर्वदर्शिता और सर्वज्ञता प्राप्त हो जाती है। 'नाम' के साथ सुरत को जोड़ने से प्रभु की मानव एकता में ज्योति प्रकट हो जाती है। व्यक्ति वास्तव में वरप्राप्त हो जाता है और अपने खोये हुए ब्रह्मत्व को पुनः प्राप्त कर लेता है।

नामे ही घटि चानणा नामे सोभा पाई।।
नामे ही सुखु ऊपजै नामे सरणाई।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

नामि रते त्रिभवण सोझी होइ।।
नानक नामि रते सदा सुखु होइ।।
— आदि ग्रंथ (रामकली म॰1, पृ॰941)

करि किरपा जिसु आपनै नामि लाए।।
नानक चउथे पद महि सो जनु गति पाए।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी, म॰5, पृ॰284)

(छ) 'नाम' सभी बंधनों को तोड़ देता है और मुक्ति प्रदान कराता है :

जन नानक नामु धिआइआ मेरी जिंदुडीए जमकंकरु नेडि न आवै राम।।
— आदि ग्रंथ (बिहागड़ा म॰4, पृ॰540)

नाइ सुणिऐ सुचि संजमो जमु नेडि न आवै।।

— आदि ग्रंथ (सांरग की वार म॰4, पृ॰1240)

नामे नामि करे वीचारु।। आपि तरै कुल उधरणहारु।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰362)

नामे ही हम निरभउ भए।। नामे आवन जावन रहे।।

— आदि ग्रंथ (गौंड म॰5, पृ॰863)

नंना नरकि परहि ते नाही।। जा कै मनि तनि नामु बसाही।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰257)

बंधन तोडै मुकति होइ सचे रहै समाइ।।
इसु जग महि नामु अलभु है गुरमुखि वसै मनि आइ।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ की वार म॰4, पृ॰644)

इसके अतिरिक्त 'नाम' से अनेक लाभ प्राप्त किये जा सकते हैं। मन संतुष्ट हो जाता है और इच्छाओं–कामनाओं से डोलता नहीं। संसार की सभी इच्छाएँ–कामनाएँ लुप्त हो जाती हैं और 'नाम' के अभ्यासी पर संसार और सांसारिक पदार्थों और संबंधों के ज़हर का असर नष्ट हो जाता है। उसके सभी कार्य और क्रिया–कलाप केवल वैराग्य की भावना के साथ संपन्न होते हैं, और इसीलिये आगे से, वे कोई बंधन का कारण नहीं बनते। सत् में स्थापित होने से, वह सत् का स्वरूप ही बन जाता है और इस प्रकार मुक्ति को प्राप्त करता है। 'नाम' का उपासक सत्गुरु को सदा ही प्यारा होता है।

नामु जपहु मेरे गुरसिख मीता।।
नामु जपहु नामे सुखु पावहु नामु रखहु गुरमति मनि चीता।।
नामो नामु सुणी मनु सरसा।। नामु लाहा लै गुरमति बिगसा।।
नाम बिना कुसटी मोह अंधा।। सभ निहफल करम कीए दुखु धंधा।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰367)

जब लगु जोबनि सासु है तब लगु नामु धिआइ।।
चलदिआ नालि हरि चलसी हरि अंते लए छडाए।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰82)

सिक्ख धर्मग्रंथों में 'नाम' की प्राप्ति के लिये हार्दिक प्रार्थनाएँ और गहन याचनाएँ उपलब्ध हैं।

हरि के जन सतिगुर सत पुरखा हउ बिनउ करउ गुर पासि।।
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि।।
— आदि ग्रंथ (गूजरी म॰4, पृ॰492)

जाचिकु जाचै नामु तेरा सुआमी घट घट अंतरि सोई रे।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰209)

जिनी नामु धिआइआ गए मसकति घालि।।
नानक ते मुख उजले केती छुटी नालि।।
— आदि ग्रंथ (जप जी समापन म॰1, पृ॰8)

'हरि–नाम' और 'राम–नाम'

'नाम' सर्वोपरि है, वही सृष्टा है। उसके अलावा संसार में अन्य कुछ भी नहीं है और सभी पदार्थों में केवलमात्र वही तो विद्यमान है। धर्मग्रंथों में प्रभु को 'हरि' कह कर संबोधित किया गया है। 'हरि' और 'नाम' लगभग एक ही हैं। 'हरि' जब क्रियाशील हुआ या इज़हार में आया है, तो उसे 'हरि–नाम' कहा गया अर्थात हरि से प्रकटती उसकी 'नाम' सत्ता। 'नाम' के इस पक्ष को स्पष्ट करने और समझाने के लिये, उसे धर्मग्रंथों में अनेक स्थानों पर 'हरि–नाम' कहा गया है।

और फिर, 'नाम' या प्रभु की सत्ता, चाहे जो कुछ उसे कहो, वही जीवन की रचनात्मक सत्ता है। वह सर्वव्यापी है और सभी जगत दृश्य और अदृश्य को रचने और उसे संपोषित रखने का काम उसी के द्वारा हो रहा है। उसके सर्वव्यापक होने का विचार को प्रस्तुत करने हेतु उसे अक्सर 'राम–नाम' कहा जाता है।

अध्याय

: **4** :

हरि-रस

अब हम एक अन्य शब्द, 'हरि–रस' या दैवी नशे की ओर आते हैं। जो कोई भी 'नाम' या 'शब्द' से जुड़ता है, उसे एक तरोताज़गी का अनुभव, जो कि इतना मीठा और तन्मयकारी है कि उसे लफ्ज़ों में बयान नहीं किया जा सकता। नशा और विस्मय प्रदान करने की बजाय, ये व्यक्ति को परा–चेतनता और सार्वभौमिक बोध की अवस्था में उठा कर पहुँचा देता है। 'शब्द' के ज्ञान से सब कुछ अन्य भी जाना जा सकता है। एक बार यदि आत्मा इस मीठे अमृत को चख लेती है, तो वह उसे छोड़ नहीं सकती और सदा ही इस के संपर्क में रहना चाहती है।

नाम ख़ुमारी नानका चढ़ी रहे दिन रात।

— जनम–साखी, गुरु नानक (भाई बाला)

क्राइस्ट इसे 'जीवनदायी जल' ('Water of Life') कहते हैं। मुस्लिम संत इसे 'आबे–हयात' कहते हैं और हिंदू इसे 'अमृत' या शाश्वत जीवन देने वाला पेय कहते हैं। ये जीवन दाता है, क्योंकि ये ही आत्मा को अमरत्व प्रदान करता है। क्योंकि इस में जीवनदायी तत्व मौजूद है, जिसे संत 'महारस' कहते हैं अथवा सबसे ऊँचे दर्जे का रस। जबकि अन्य दूसरे नशे तो विकृत भावुकता प्रदान करते और विवेक तथा बुद्धि को धुंधला करते हैं, 'नाम' का अमृत सत्य के साथ संबंध बनाता है, जिसके द्वारा जीवन के सही मूल्यों को आंकने की ताक़त मिलती है।

बिखै बनु फीका तिआगि री सखीऐ नामु महा रसु पीओ।।
बिनु रस चाखे बुडि गई सगली सुखी न होवत जीओ।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰5, पृ॰802)

नानक नामु महा रसु मीठा गुरि पूरै सचु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰1, पृ॰243)

संता की बेनंती नामु महा रसु दीजै राम।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰5, पृ॰784)

हरि–रस क्या है :

'हरि–रस' वही है, जो 'नाम' या 'अनहद वाणी' कहलाता है। 'हरि रस' का स्पर्श ही प्रभु का स्पर्श है। जिन्हें 'हरि–रस' का अनुभव संबंध नहीं मिलता, वे वास्तव में ही अभागे लोग हैं और काल या मृत्यु के दायरे से कभी निकल सकते।

जिन हरि हरि हरि रसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि।।

— आदि ग्रंथ (सोदरु–रहरासि गूजरी म॰4, पृ॰10)

हरि कीए पतित पवित्र मिलि साध गुर हरि नामै हरि रसु चाखिबा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰697)

अनहत बाणी गुर सबदि जाणी हरि नामु हरि रसु भोगो।।
कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ करण कारण जोगो।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰921)

हरि रसु चाखै तां सुधि होइ।।
नानक नामि रते सचु सोइ।।

— आदि ग्रंथ (बसंत म॰3, पृ॰1174)

यह एक लंबी कहानी है और एक अंतहीन कथा :

जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी म॰5, पृ॰13)

दीन दइआल होवहु जन ऊपरि जन देवहु अकथ कहानी।।
संत जना मिलि हरि रसु पाइआ हरि मनि तनि मीठ लगानी।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰4, पृ॰1199)

ये 'अमृत' है (सदा का जीवनदायिनी जल है) :

सतिगुरु सेवि सफल हरि दरसनु मिलि अंमृतु हरि रसु पीअहु।।

— आदि ग्रंथ (बिलावल म॰4, पृ॰800)

इहु हरि रसु पावै जनु कोइ।।
अंमृतु पीवै अमरु सो होइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी सुखमनी म॰5, पृ॰287)

'हरि–रस' कहाँ है? :

अनेक पवित्र धर्मग्रंथों में— जैसे कि वेद, स्मृतियों आदि में 'नाम' या 'हरि–रस' की काफ़ी बड़ाई गाई गई है। हर जगह पानी ही पानी है, लेकिन तुम्हें उसकी बूंद भी नसीब नहीं— अगर तुम अंतर्मुख हो जाओगे, तो तुम इस मीठे अमृत को देख और चख सकते हो। ये 'ज़िंदगी का जल' है, जो कि इंसानी जिस्म रूपी मंदिर में ही मिल सकता है और इसे हम अंदर की ओर सुरत करके, मन–इंद्रियों के घाट से हट कर उसका अनुभव कर सकते हैं। महान अमरीकी दार्शनिक, एमर्सन हमें इसीलिये "अंदर दरवाज़ा खटखटाने" ('tap-inside') की सलाह देते हैं। हालाँकि ये ज़िन्दगी देने वाली 'रूहानी धारा' हर जगह मौजूद है, फिर भी हम इसे उस समय तक नहीं देख सकते, जब तक कि अपने अंदर 'दिव्य–चक्षु' या 'अंतरी आँख' या 'एकल आँख'— जैसे कि इसे क्राइस्ट कहते हैं, विकसित नहीं कर लेते। इस भीतर की नज़र को विकसित करने हेतु हमें अंतर्मुख होना होता है, और इसी वजह से महापुरुष हमेशा हमें मन के गर्भग्रह के भीतर अंतर्मुख होने पर ज़ोर देते हैं। धर्मग्रंथों पोथियों के पढ़ने से रूहानी विज्ञान के लिये थोड़ा सा प्यार का उभार ज़रूर मिल सकता है, परन्तु जब तक हम उसका क्रियात्मक ज्ञान नहीं प्राप्त कर सकते।

वेदु पड़हि हरि रसु नही आइआ।। वादु वखाणहि मोहे माइआ।।
अगिआनमती सदा अंधिआरा गुरमुखि बूझि हरि गावणिआ।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰128)

इहु हरि रसु वणि तिणि सभतु है भागहीण नही खाइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰4, पृ॰41)

'हरि रस' इस शरीर रूपी मंदिर में मौजूद है :

चरन कमल बसे रिद अंतरि अंमृत हरि रसु चाखे।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰5, पृ॰616)

भ्रम का संगलु तोड़ि निराला हरि अंतरि हरि रसु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰1, पृ॰1041)

'हरि–रस' शरीर के 'दशम द्वार' (दसवें दरवाज़े) में है और जब आत्मा नौ दरवाज़ों से ऊपर उठती है और जिस्म–जिस्मानियत को भूल जाती है, तब ही अमृत रस का स्वाद चखती है।

काइआ नगरु नगरु है नीको विचि सउदा हरि रसु कीजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1323)

नउ दरवाज नवे दर फीके रसु अंमृतु दसवे चुईजै।।
कृपा कृपा किरपा करि पिआरे गुर सबदी हरि रसु पीजै।।

— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1323)

'हरि–रस' को कैसे पायें? :

(क) प्रभु की कृपा द्वारा :

प्रभु जीवनदायी जल है और वह अपने सारस्वरूप से प्रथक् नहीं है और वह प्रभु ख़ुद ही अपनी जीवनदायी धारा की भेंट, जिसे वह चाहे, दे देता है।

आपे अंमृतु आपि है पिआरा आपे ही रसु आपै।।
आपे आपि सलाहदा पिआरा जन नानक हरि रसि ध्रापै।।

— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰4, पृ॰605)

हवा वहाँ चलती है, जहाँ उसका झुकाव होता है; उसी तरह से प्रभु की इच्छा व ख़ुशी भी होती है।

नदरि करे ता हरि रसु पावै।। नानक हरि रसि हरि गुण गावै।।

— आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰733)

सदा हरि रसु पाए जा हरि भाए रसना सबदि सुहाए।।
नामु धिआए सदा सुखु पाए नामि रहै लिव लाए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰246)

(ख) अपनी ख़ुशकिस्मती से :

गुरमुखि हरि रसु चाखै कोइ।।
तिसु सदा अनंदु होवै दिनु राती पूरै भागि परापति होइ।।

— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰664)

हरि रस भोग महा निरजोग वडभागी हरि रसु पाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰445)

हरि हरि रसु पाइआ गुरमति हरि धिआइआ
धुरि मसतकि भाग पुरान जीउ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰446)

(ग) सत्गुरु के द्वारा :

सत्गुरु का मिलना प्रभु की कृपा से ही संभव है, जिसके द्वारा 'हरि रस' में दीक्षा मिलती है, जो कि फिर, आत्मा की ख़ुराक़ मुहैय्या करता है, जिस पर रूह दिनों–दिन हृष्ट–पुष्ट होती जाती है।

एहु हरि रसु करमी पाईऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ।।
कहै नानकु होरि अन रस सभि वीसरे जा हरि वसै मनि आइ।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰921)

सतिगुरु मिलै वडभागि संजोग।।
हिरदै नामु नित हरि रस भोग।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰3, पृ॰162)

हरि कितु बिधि पाईऐ संत जनहु जिसु देखि हउ जीवा।।
हरि बिनु चसा न जीवती गुर मेलिहु हरि रसु पीवा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी बैरागनि म॰3, पृ॰163)

भाउ भोजनु सतिगुरि तुठै पाए।।
अन रसु चूकै हरि रसु मंनि वसाए।।

— आदि ग्रंथ (माझ म॰3, पृ॰115)

हरि का नामु मीठा पिरा जीउ जा चाखहि चितु लाए।।
रसना हरि रसु चाखु मुये जीउ अन रस साद गवाए।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰3, पृ॰246)

(घ) किसी संत-सत्गुरु की कृपा द्वारा :

गुर किरपा ते हरि रसु पाए।। नानक नामि रते गति पाए।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰361)

जिस नो कृपा करे सो धिआवै।।
नित हरि जपु जापै जपि हरि सुखु पावै।।
गुर परसादी हरि रसु आवै जपि हरि हरि पारि लंघाई जीउ।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰4, पृ॰998)

(च) पवित्र सत्संग द्वारा :

साधसंगि मिलि हरि रसु पाइआ।।
कहु नानक सफल ओह काइआ।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰374)

साधसंगति महि हरि रसु पाईऐ गुरि मिलिऐ जम भउ भागा।।
— आदि ग्रंथ (सोरठ म॰1, पृ॰598)

सतसंगति मिलै वडभागि ता हरि रसु आवए जीउ।।
— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰4, पृ॰690)

(छ) प्रभु का हुक्म स्वीकारने से :

गुरमुखि होवै सु भाणा मंने सहजे हरि रसु पीजै।।
— आदि ग्रंथ (सारंग की वार म॰4, पृ॰1246)

'हरि-रस' किसे मिलता है? :

सत्गुरु का कोई विरले शिष्य, जो वास्तव में उससे प्यार करता है, उसे ही 'हरि-रस' मिलता है। परन्तु अन्य सभी, जो कि मन-इंद्रियों के ग़ुलाम रह जाते हैं, उससे बड़ी दूर रहते हैं।

ऐसो रे हरि रसु मीठा। गुरमुखि किनै विरलै डीठा।।
— आदि ग्रंथ (रामकली म॰5, पृ॰886)

गुरमुखि हरि रसु चाखै कोइ।।
तिसु सदा अनंदु होवै दिनु राती पूरै भागि परापति होइ।।
— आदि ग्रंथ (धनासरी म॰3, पृ॰664)

पंखी पंच उडरि नही धावहि।।
सफलिओ बिरखु अंमृत फलु पावहि।।
गुरमुखि सहजि रवै गुण गावै हरि रसु चोग चुगाइदा।।
— आदि ग्रंथ (मारू सोलहे म॰1, पृ॰1033)

साकत हरि रस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी पूरबी म॰4, पृ॰13)

साकत मुठे दुरमती हरि रसु न जाणंन्हि।।
जिन्ही अंमृतु भरमि लुटाइआ बिखु सिउ रचहि रचंन्हि।।
— आदि ग्रंथ (बिलावल की वार म॰4, पृ॰854)

मनमुखि हरि रसु चाखिआ न जाइ।।
हउमै करै बहुती मिलै सजाइ।।
— आदि ग्रंथ (सूही म॰4, पृ॰733)

'हरि–रस' संसार की सबसे मीठी चीज़ से भी ज़्यादा मीठा है और जो एक बार भी केवल उसका स्वाद पूरी तरह से चख लेते हैं, वे हमेशा के लिये ही बाक़ी के सभी पदार्थों की भूख–प्यास खो बैठते हैं और बाहरी दुनिया के प्रति मृतकतुल्य हो जाते हैं– वे पूर्ण सन्तोष का जीवन जीते हैं।

रूप सुंदरीआ अनिक इसतरीआ।।
हरि रस बिनु सभि सुआद फिकरीआ।।
— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰385)

जा कउ रसु हरि रसु है आइओ।।
सो अन रस नाही लपटाइओ।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰186)

हरि रस का तूं चाखहि सादु।। चाखत होइ रहहि बिसमादु।।
— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰5, पृ॰180)

प्रभु के भक्त बाक़ी सभी चीज़ों की बजाय 'हरि–रस' को तरजीह देते हैं। ये हर तरह से लाजवाब और अद्वितीय है।

बसुधा सपत दीप है सागर कढि कंचनु काढि धरीजै।।
मेरे ठाकुर के जन इनहु न बाछहि हरि मागहि हरि रसु दीजै।।
— आदि ग्रंथ (कलिआन म॰4, पृ॰1323)

सनकादिक, ब्रह्मा, शुकदेव, प्रह्लाद, ऋषि–मुनि, 'हरि–रस' के पान द्वारा ही सर्वोच्च आत्मिक सिद्धियों को प्राप्त हुए।

सनकादिक ब्रहमादिक गावत गावत सुक प्रहिलाद।।
पीवत अमिउ मनोहर हरि रसु जपि नानक हरि बिसमाद।।
— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1224)

'हरि–रस' के गुण :

'नाम' के समुद्र में 'हरि–रस' हल्की लहरों के रूप में प्रकट होता हैं। जब दिव्य संगीत की स्वरलहरियाँ प्रकट होती हैं, तो आत्मा उसकी मधुर तरंगों से सम्मोहित हो जाती है और स्थायी आनंद से सराबोर हो जाती है। संसार और सांसरिकता का प्रेम अपने आप ही हट जाता है। मुस्लिम दरवेशों ने अक्सर इस की पुरानी शराबों के नशों से तुलना करने की कोशिश की है, क्योंकि उसके नशे में कुछ देर के लिये आस–पास की दुनिया भुला दी जाती है।

हरि रसु पीवत सद ही राता।। आन रसा खिन महि लहि जाता।।
हरि रस के माते मनि सदा अनंद।। आन रसा महि विआपै चिंद।।
हरि रसु पीवै अलमसतु मतवारा।। आन रसा सभि होछे रे।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰5, पृ॰377)

माई री मनु मेरो मतवारो।।
पेखि दइआल अनद सुख पूरन हरि रसि रपिओ खुमारो।।

— आदि ग्रंथ (सारंग म॰5, पृ॰1225)

क्योंकि ये रूहानी प्यार की शराब का नशा सत्गुरु या मुर्शिद से मिलता है, उसे कविता की भाषा में अक्सर 'साक़ी' या रूहानी नशे के प्याले पिलाने वाला कहा जाता है। हाफ़िज़ साहिब, जो कि एक महान रूहानी शायर हुए हैं, फ़रमाते हैं :

बदिह साक़ी मए बाक़ी कि दर जन्नत न–ख़्वाही याफ़्त।

— दीवाने–हाफ़िज़ (पृ॰30)

(ऐ साक़ी! मुझे ऐसी लबालब शराब के प्याला पिला, जिसका नशा जन्नत में भी न मिले और मेरी रूहानी समस्याओं समेत, सभी मुश्किलों का भी हल खोज दे।)

भाई नन्दलाल ने भी प्रार्थना की :

बदिह साक़ी मरा यक़ जामे–जाँ रंगीनिए दिलहा।
ब–चश्मे–पाक बीं आसां कुनम ईं जुमला मुश्किलहा।

— कुल्लीयाते–भाई नन्दलाल गोया (ग़ज़ल 3, पृ॰50)

(ऐ साक़ी! मुझे ऐसी लबालब शराब के प्याला पिला, जो मुझे नशा भी दे और मेरी सभी रहस्यों का भी हल खोज दे।)

'हरि–रस' से हमें अनगिनत लाभ हैं। 'हरि–रस' से साधक दुनियावी पापों और कष्टों से छूट जाता है; आंतरिक अहंकार जड़ से ही समाप्त हो जाता है; बुद्धि तीक्ष्ण हो जाती है और मस्तिष्क का कमल खिल कर सही हालत में आ जाता है। 'हरि–रस' के अभ्यास से संकेन्द्रित ध्यान की प्राप्ति होती है, व्यक्ति संसार–सागर से आसानी से पार हो जाता है, सदा के लिये मुक्त हो जाता है और मन और माया से छुटकारा पा लेता है। उसके बाद वह आंतरिक मंडलों में दाख़िल होता है और परमात्मा की बादशाहत को पा लेता है, जो कि मौजूदा हालात में उस के लिये खोई हुई रहती है।

ऐसा हरि रसु रमहु सभु कोइ।।
सरब कला पूरन प्रभु सोइ।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰196)

'गुरू–नाम' अथवा 'गुरूमुख–नाम' :

इस बारे में हमारे सामने कुछ और शब्द समझने के लिये है, जो कि इसी विषय से संबंधित है और इसी बात को व्यक्त करते हैं। जब सत्गुरु के द्वारा नाम की ध्वनिधारा प्रकट हो जाती है, तो उसे प्रायः 'गुरु–नाम' अथवा 'गुरु का शब्द' कहते हैं। जो कि 'गुरुमुख'नाम' है, वह शब्द, जिसका विवरण सत्गुरु के द्वारा दिया जाता है या 'गुरमत–नाम'— वह शब्द, जो गुरु के अनुदेशों का पालन करके सुना जा सकता है। सत्गुरु का सच्चा भक्त इसे सत्गुरु की कृपा से ही पा सकता है, अन्य कोई रास्ता नहीं है। ये सभी शब्द उस गुप्त तथा अश्रुत नाद के लिये हैं, जिसे सत्गुरु प्रकट करके सुनाता है, जो दीक्षा के समय, आत्म–विश्लेषण द्वारा आंतरिक अनुभव पाने की पूरी विधि विस्तार से समझाता है, जिसके दिनों–दिन अभ्यास से साधक अपने रूहानी अनुभवों को आगे बढ़ाकर किसी भी हद तक विकसित कर सकता है।

❀❀❀

अध्याय

: **5** :

उपसंहार

'पवित्र नाम' के साथ सम्पर्क न करने से हानियाँ :

(क) बग़ैर 'नाम' के हम जीवन के सच्चे मूल्यों के प्रति मुर्दा रह जाते हैं :

आपि जगाए सेई जागे गुर कै सबदि वीचारी।।
नानक सेई मूए जि नामु न चेतहि भगत जीवे वीचारी।।

— आदि ग्रंथ (रामकली म॰3, पृ॰911)

दुलभ देह पाई वडभागी।। नामु न जपहि ते आतम घाती।।
मरि न जाही जिना बिसरत राम।। नाम बिहून जीवन कउन काम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰188)

(ख) बग़ैर 'नाम' के आदमी अंधा है और ठगा जा रहा है :

नाम बिना जेतो लपटाइओ कछू नही नाही कछु तेरो।।
आगै दृसटि आवत सभ परगट ईहा मोहिओ भरम अंधेरो।।

— आदि ग्रंथ (कानड़ा म॰5, पृ॰1302)

बिनु हरि भजन रंग रस जेते संत दइआल जाने सभि झूठे।।
नाम रतनु पाइओ जन नानक नाम बिहून चले सभि मूठे।।

— आदि ग्रंथ (टोडी म॰5, पृ॰717)

(ग) 'नाम' के बग़ैर कुछ भी उपयोगी नहीं है :

सगल सरीर आवत सभ काम।।
निहफल मानुखु जपै नही नाम।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी म॰5, पृ॰190)

अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा।।
जलतो जलतो कबहू न बूझत सगल बृथे बिनु नामा।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी माला म॰5, पृ॰215)

(घ) 'नाम' के बिना व्यक्ति अपनी इज़्ज़त भी खो बैठता है :

नामहीन कालख मुखि माइआ।।
नाम बिना ध्रिगु ध्रिगु जीवाइआ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰4, पृ॰366)

चहु जुगि मैले मलु भरे जिन मुखि नामु न होइ।।
भगती भाइ विहूणिआ मुहु काला पति खोइ।।
जिनी नामु विसारिआ अवगण मुठी रोइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰57)

(च) 'नाम' के बग़ैर इंसान सभी कष्टों से घिरा रहता है :

किलविख सभे उतरनि नीत नीत गुण गाउ।।
कोटि कलेसा ऊपजहि नानक बिसरै नाउ।।

— आदि ग्रंथ (गूजरी की वार म॰5, पृ॰522)

(छ) बग़ैर 'नाम' के, इंसान दुनियादारी में फँस जाता है और हमेशा ही कष्टों में घिरा रहता है :

जिन हरि हिरदै नामु न बसिओ तिन मात कीजै हरि बांझा।।
तिन सुंञी देह फिरहि बिनु नावै ओइ खपि खपि मुए करांझा।।

— आदि ग्रंथ (जैतसरी म॰4, पृ॰697)

आसा मनसा बांधो बारु।। नाम बिना सूना घरु बारु।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰1, पृ॰1187)

मनमुख नामु न चेतनी बिनु नावै दुख रोइ।।
आतम रामु न पूजनी दूजै किउ सुखु होइ।।

— आदि ग्रंथ (सलोक वारां ते वधीक म॰3, पृ॰1414)

ऐसा जगु देखिआ जूआरी।। सभि सुख मागै नामु बिसारी।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी गुआरेरी म॰1, पृ॰222)

(ज) बग़ैर 'नाम' के इंसान कोढ़ी के समान है और हमेशा ही मौत के पंजे में रहता है :

कोटि लाख सरब को राजा जिसु हिरदै नामु तुमारा।।
जा कउ नामु न दीआ मेरै सतिगुरि से मरि जनमहि गावारा।।

— आदि ग्रंथ (मारू म॰5, पृ॰1003)

नाराइणु नह सिमरिओ मोहिओ सुआद बिकार।।
नानक नामि बिसारिऐ नरक सुरग अवतार।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी थिती म॰5, पृ॰298)

(झ) 'नाम' के बिना सभी नीच जन्म वाले हैं और सदा ही कष्टों में पड़े रहते हैं :

भगति रते से ऊतमा जति पति सबदे होइ।।
बिनु नावै सभ नीच जाति है बिसटा का कीड़ा होइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰426)

इसु जुग महि सोभा नाम की बिनु नावै सोभ न होइ।।
इह माइआ की सोभा चारि दिहाड़े जादी बिलमु न होइ।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰3, पृ॰429)

(ट) 'नाम' के बग़ैर ज़िन्दगी बिल्कुल ही व्यर्थ है :

जिन्ही नामु विसारिआ दूजै भरमि भुलाई।।
मूलु छोडि डाली लगे किआ पावहि छाई।।

— आदि ग्रंथ (आसा म॰1, पृ॰420)

मेरी मेरी किआ करहि पुत्र कलत्र सनेह।।
नानक नाम विहूणीआ निमुणीआदी देह।।

— आदि ग्रंथ (मारू की वार म॰5, पृ॰1101)

वै सुत वै बित वै पुर पाटन बहुरि न देखै आइ।।
कहतु कबीरु रामु की न सिमरहु जनमु अकारथ जाइ।।

— आदि ग्रंथ (केदारा, कबीर, पृ॰1124)

(ठ) जो 'नाम' को नहीं ध्याते, दैत्याकार जीवन चक्र उनके लिये सदा चलता ही रहता है :

मन कहा बिसारिओ राम नामु।।
तनु बिनसै जम सिउ परै कामु।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰9, पृ॰1186)

मत हरि विसरिऐ जम वसि पाहि।। अंत कालि मूडे चोट खाहि।।

— आदि ग्रंथ (बंसत म॰1, पृ॰1189)

कबीर ऊजल पहिरहि कापरे पान सुपारी खाहि।।
एकस हरि के नाम बिनु बाधे जम पुरि जांहि।।

— आदि ग्रंथ (सलोक भगत कबीर, पृ॰1366)

(ड) 'नाम' के बिना इंसान हमेशा ही दुर्दशा का शिकार रहता है :

नामु मिलै चलै मै नालि।। बिनु नावै बाधी सभ कालि।।

— आदि ग्रंथ (गउड़ी दखनी म॰1, पृ॰152)

जलीआ सभि सिआणपा उठी चलिआ रोइ।।
नानक नामि विसारिऐ दरि गइआ किआ होइ।।

— आदि ग्रंथ (सिरी राग म॰1, पृ॰17)

कहि कबीर निरधन है सोई।। जा के हिरदै नामु न होई।।

— आदि ग्रंथ (भैरउ भगत कबीर, पृ॰1159)

❀❀❀